
इकाई 4 आरण्यक साहित्य, आरण्यकों का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य

इकाई की रूपरेखा

- 4.1 उद्देश्य
- 4.2 प्रस्तावना
- 4.3 आरण्यक परिचय
 - 4.3.1 आरण्यक शब्द का अर्थ-विचार
 - 4.3.2 आरण्यकों की पृष्ठभूमि
 - 4.3.3 आरण्यकों का रचना एवं देशकाल
 - 4.3.4 आरण्यक ग्रन्थों की भाषा एवं शैली.
 - 4.3.5 आरण्यकों के प्रवचनकर्ता
- 4.4 आरण्यकों का स्वरूप
 - 4.4.1 ऋग्वेदीय आरण्यक
 - 4.4.2 यजुर्वेदीय आरण्यक
 - 4.4.3 सामवेदीय आरण्यक
 - 4.4.4 अथर्ववेदीय आरण्यक
 - 4.4.5 आरण्यकों का ब्राह्मणों के साथ सम्बन्ध
 - 4.4.6 आरण्यकों का उपनिषदों के साथ सम्बन्ध
- 4.5 आरण्यकों का प्रतिपाद्य
 - 4.5.1 महाव्रत पर्व
 - 4.5.2 यज्ञ करने की सार्वभौमिकता
 - 4.5.3 प्रवर्ग्य कर्म
 - 4.5.4 अन्न की महत्ता
 - 4.5.5 वैश्वानर अग्नि
 - 4.5.6 पंचमहायज्ञ
 - 4.5.7 सोमयाग
 - 4.5.8 अश्वमेधयज्ञ
 - 4.5.9 अग्निहोत्र यज्ञ
 - 4.5.10 ऊँ का महत्त्व
 - 4.5.11 गायत्री का महत्त्व
 - 4.5.12 महावाक्य
 - 4.5.13 अर्थज्ञान का महत्त्व
 - 4.5.14 धर्म
 - 4.5.15 प्राणविद्या
 - 4.5.16 उक्थ

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

4.6 आरण्यकों की दार्शनिक अवधारणा

- 4.6.1 ब्रह्म की अवधारणा
- 4.6.2 पुरुष की अवधारणा
- 4.6.3 आत्मा का सिद्धान्त
- 4.6.4 प्राण तत्त्व का सिद्धान्त
- 4.6.5 ऐतिहासिक सन्दर्भ
- 4.6.7 आरण्यकों का स्वरूप

4.7 सारांश

4.8 पारिभाषिक शब्दावली

4.9 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

4.10 बोध प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

1. आरण्यक साहित्य की रूपरेखा जान सकेंगे।
2. आरण्यकों के स्वरूप को जान सकेंगे।
3. आरण्यक ग्रन्थों पर उपलब्ध अध्ययन विषयवस्तु का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
4. आरण्यकों के प्रतिपाद्य विषय को जान सकेंगे।
5. वैदिक ज्ञान परम्परा में आरण्यकों के महत्त्व को समझ सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों! अब तक आप ब्राह्मण साहित्य का परिचय प्राप्त कर चुके हैं। उनमें आपने अध्ययन किया कि वैदिक साहित्य में प्रत्येक वेद के संहिता भाग और ब्राह्मण भाग हैं। उसी प्रकार आरण्यक ग्रन्थ भी है जैसे कि ऋग्वेद का ऐतरेय आरण्यक, शांखायन तथा यजुर्वेद का बृहदारण्यक, तैत्तिरीय आरण्यक, मैत्रेयी आरण्यक। सामवेद का तलवार आरण्यक और छान्दोग्य आरण्यक। इस इकाई में आप इन्हीं आरण्यकों का तात्पर्य, प्रतिपाद्य एवं स्वरूप का अध्ययन करेंगे।

अब तक हमने देखा कि वेद के संहिता तथा ब्राह्मण भाग में वैदिक ज्ञान की 'कर्मकाण्ड मूलक' प्रवृत्तियों की स्थापना होती है। संहिताओं में जहां मन्त्र और सूक्तों के माध्यम से देवताओं की स्तुति की गई है वहीं दूसरी तरफ ब्राह्मण ग्रन्थों द्वारा मुख्यतः उन मन्त्रों के विनियोग की विधि बताई गयी है। भारतीय संस्कृति की तीन धाराओं कर्म, उपसना और ज्ञान में से संहिता और ब्राह्मण दोनों ही मूलतः 'यज्ञ' अथवा 'कर्मकाण्ड' से जुड़े हुए हैं। भारतीय संस्कृति की उपासना मूलक परम्पराओं, विधियों का ज्ञान आरण्यकों से उद्घाटित होता है। आचार्य शंकर का मत है कि आरण्यकों में वर्णित उपासनाएं हैं। इन उपासनाओं से मोक्ष के समीपवर्ती स्थिति प्राप्त होती है। ये उपासनाएं कर्माब से सम्बद्ध हैं और कर्मफल की समृद्धि ही इनका फल है। चित्त शुद्धि से सम्बद्ध होने के कारण अद्वैत ज्ञान की उपकारिणी हैं।

इस इकाई में हम 'वन से सम्बन्धित वेद' कहे जाने वाले साहित्य अर्थात् 'आरण्यकों' की रूपरेखा, स्वरूप तथा प्रतिपाद्य के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे।

4.2 आरण्यक परिचय

जैसा कि नाम से ही पता चलता है कि आरण्यक उन लोगों के मनन-चिन्तन का विषय था, जो लोग वनों में रहते थे। आचार्य सायण ने तैत्तिरीय आरण्यक में बताया है कि, अरण्य अर्थात् वन में पाठ होने से इसका नाम आरण्यक है-

अरण्याध्यनादेतद् आरण्यकमितीयते।
अरण्ये तदधीयीतेत्येवं वाक्य प्रवक्ष्यते॥

उनके अनुसार आरण्यक ग्रन्थों के मनन हेतु वन का शान्त वातावरण होना चाहिए, ग्रामों अथवा नगरों के वातावरण में नहीं। जबकि ऐतरेय ब्रह्मण में लिखते हैं वे लिखते हैं कि- "अरण्य एव पाठयत्वादारण्यकमितीर्यते।"

अब आप सोच सकते हैं कि क्यों इन ग्रन्थों का अध्ययन, मनन व चिन्तन वनों में ही किया जाना चाहिए? वैदिक काल में धर्म आश्रम व्यवस्था पर आधारित था। ब्राह्मण ग्रन्थों में उन कर्मकाण्डों का वर्णन है जिनका विधान गृहस्थों के लिए बताया गया है, किन्तु वृद्धावस्था में जब लोग वानप्रस्थ में प्रवेश करते हैं तब उन्हें कर्मकाण्डों के अलावे किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस अवस्था में वे आरण्यक का आश्रय लेते हैं। आरण्यक का मुख्य विषय यज्ञ नहीं बल्कि यज्ञों के आध्यात्मिक तत्वों की मीमांसा है। यज्ञीय अनुष्ठान के स्थान पर उनके दार्शनिक विचार आरण्यकों के मुख्य विषय के रूप में दिखाई पड़ते हैं। इसके अलावा प्राणविद्या का विशेष प्रतिपादन आरण्यकों में प्राप्त होता है। आप देख सकते हैं कि ऐसे गहन विषयों के अध्ययन व चिन्तन हेतु वनों का एकान्त वातावरण ही उपयुक्त है। वन के उस शान्त वातावरण के प्रभाव को दर्शाती ऋग्वेद की यह ऋचा देखें (ऋग्वेद 8/6/28)-

उपरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्।
धिया विप्रो अजायत॥

अर्थात् "अरण्य प्रान्तर में निहित, नदी-पर्वत, पुष्प, वृक्षादि प्रकृति के सभी अवयव, ज्ञान के अक्षय स्रोत हैं, जो अपने उष्मीय प्रभाव से मानव मन को तरंगित कर सार्थक तत्त्व प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते हैं तभी विप्रों को उच्च मेधा प्राप्त होती है। हम पाते हैं कि यज्ञोपवीत का सर्वप्रथम उल्लेख तैत्तिरियारण्यक में प्राप्त होता है। अर्थात् हमें संस्कारों से सुसंस्कृत करने हेतु आरण्यक उन्नत दिखाई पड़ते हैं। इसी आरण्यक में हमें काल का अत्यन्त सुन्दर निदर्शन प्राप्त होता है। निरन्तर अग्रसर काल के अखण्ड सम्वत्सर रूपी परमार्थिक काल का हमें ज्ञान प्राप्त होता है। व्यवहार के लिए काल के नाना खण्ड, मुहूर्त, दिवारात्रि, पक्ष, मास आदि में विभक्त करने से भी उसका एकाकार रूप अक्षयस्रोत से प्रवाहित होने वाली किसी महानदी के समान कभी नहीं सूखती। हमें चौथे आश्रम सन्यास से भी परिचित कराने वाले भी आरण्यक ही हैं। आरण्यक ग्रन्थों का कालखण्ड वह है जिसमें गार्गी, मैत्रेयी जैसी ब्रह्मवादिनी स्त्रियां इन ग्रन्थों के सार का प्रतिपादन करती हैं। प्राण, ब्रह्म, आत्मा, पुनर्जन्म आदि विषयक वर्णन भी हमें इन आरण्यकों में प्राप्त होते हैं। इतने महत्त्वपूर्ण ज्ञान को उपलब्ध करने के बाद भी हम देखते हैं कि इन ज्ञानराशि ग्रन्थों पर अपेक्षाकृत कम अध्ययन देखने को मिलता है। इस दिशा में और

अधिक प्रयासों की महती आवश्यकता है। अब हम आरण्यकों के रचना काल के विषय में जानेंगे।

4.2.1 आरण्यक शब्द का अर्थ-विचार

व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'आरण्यक' शब्द 'अरण्य' में 'बु' (भावार्थक) प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। इस प्रकार इसका अर्थ है 'अरण्य' में होने वाला- 'अरण्ये भवमिति आरण्यकम्।' बृहदारण्यक उपनिषद् में भी आरण्यक का अर्थ- 'अरण्येऽनु च्यमानत्वात् आरण्यम्।' किया गया है।

उपर्युक्त विवरण के आरधार पर हम निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि अरण्यकों का अध्ययन सामान्यतः वनों में ही किया जाता था किन्तु यह अनिवार्य नहीं था। तैत्तिरीयारण्यक के कुछ अंशों से विदित होता है कि वैदिक युग में वनों के साथ-साथ ग्रन्थों का ग्रामों में भी अध्ययन होता था।

प्रो. श्रीकिशोर मिश्र लिखते हैं- "वह वेद भाग जिसमें यज्ञानुष्ठानपद्धति, याज्ञिक मन्त्र, पदार्थ एवं फल आदि में आध्यात्मिकता का संकेत दिया गया है, 'आरण्यक' कहलाता है। यह भाग मनुष्य को आध्यात्मिक बोध की ओर झुकाकर सांसारिक बन्धनों से ऊपर उठता है। अतः इसका विशेष अध्ययन भी संसार के त्याग की भावना के कारण वानप्रस्थाश्रम के लिए अरण्य (जंगल) में किया जाता है। इसीलिये इसका नाम 'आरण्यक' प्रसिद्ध हुआ है।

एस. एन. दास गुप्ता लिखते हैं- "ये ग्रन्थ संभवतः वयोवृद्ध ऋषियों के लिए लिखे गये थे जो जीवन के अन्य कार्यों से उपरत होकर वन में निवास करते थे और जिसके लिए आवश्यक साधन और सामग्री के अभाव में जटिल कर्मकाण्ड-विधियुक्त अनुष्ठानादि करना सम्भव नहीं था। इन ग्रन्थों में विशिष्ट प्रतीकों या संकेतों पर ध्यान और मनन को अधिक महत्त्वपूर्ण समझा गया है। धीरे-धीरे ध्यान और योग यज्ञ के स्थान पर अधिक उच्च समझा जाने लगा।" (भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग-1 पृ.- 13-14) "आरण्यक में विचार स्वतन्त्र्य के कारण कर्मकाण्ड की शृंखलाएं जिन्होंने जीवन को आबद्ध कर रखा था, शनैः-शनैः छिन्न-भिन्न होने लगी इस प्रकार आरण्यकों ने उपनिषदों के विकास के लिए उच्चभूमि तैयार की। साथ ही वेदों के दार्शनिक मनन का सूत्रपात भी किया जिसके कारण हिन्दू उपनिषद् हिन्दू विचार दर्शन के महान स्रोत के रूप में विकसित हो पाए।"

कर्मकाण्ड की दृष्टि से ब्राह्मण एवं आरण्यक एक दूसरे से अधिक सन्निकट एवं सम्बद्ध हैं। इसलिए बौधायन सूत्रकार ने आरण्यकों को भी ब्राह्मण की कोटि में स्थान दिया है-

“विज्ञायते: कर्मादिष्वैतैर्जुह्यात् पूतो देकनोकान्
समुश्रुते इति हि ब्राह्मणमिति ही ब्राह्मणम्॥”

(बौ.ध.,- 3/7/7/16)

यही बात तैत्तिरीय आरण्यक में इस प्रकार मिलता है-

“कर्मादिष्वैतैर्जुह्यात् पूतो देवलोकान्समश्रुते। - तै. आ.- 2/7/5।

तैत्तिरीयारण्यक की भूमिका में सायण लिखते हैं- "अरण्याध्ययनादेतदारण्यकामितीर्यते अरण्ये तदधीयीतेत्येव वाक्यं प्रवक्ष्यते। पुनश्च एतदारण्यके सर्वं नाव्रती श्रोतुमर्हति।"

एकान्त जनशून्य स्थान में ब्रह्मचर्य में निमग्न होकर ऋषियों ने जिस गंभीर एवं चिन्तरपूर्ण विद्या का पाठ किया उसका नाम आरण्यक है। इसी कारण जिसने ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन नहीं किया वह इसके सुनने का अधिकारी नहीं है।

श्री वामन शिवराम आपटे के कोशग्रन्थ में आरण्यक शब्द के लिए लिखा है कि आरण्यक ग्रन्थ दार्शनिक एवं धार्मिक ग्रन्थ हैं। मैक्डॉनल के अनुसार-संहिता युग के बाद ब्राह्मण रचे गये। इसी समय ब्राह्मणों के पश्चात् आरण्यक ग्रन्थों की रचना हुई। आरण्यक ब्राह्मण के अंशमात्र हैं। तथापि ब्राह्मणों की विशिष्टता को द्योतित करते हुए वह 'रहस्य' ब्राह्मण नाम से व्यवहृत होते हैं। आरण्यकों को नामान्तर से रहस्य भी कहा जाता है- (गो. ब्रा.- 2/10)

4.2.2 आरण्यकों की पृष्ठभूमि

ब्राह्मणों में प्रवृत्तिमूलक धार की बहुलता एवं सक्रियता है। वास्तविक रूप से वेद के तीनों भाग-संहिता, ब्राह्मण तथा आरण्यक ये सभी कर्मकाण्ड की ही विवेचना करते हैं। आरण्यकों की विषयवस्तु के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आरण्यक ग्रन्थों का उदय एवं विकास अर्थवाद भाग के रूप में हुआ, जिनमें उन वैदिक स्थलों का उल्लेख है जो विधि भाग के निर्देशों को स्पष्ट करते हैं।

मन्त्रभाग के अतिरिक्त शेष भाग ब्राह्मण है, जैसा कि जैमिनी का कथन है- "शेषे ब्राह्मण शब्दः।" ब्राह्मण ग्रन्थों का मुख्य विषय 'यज्ञ' का सर्वांगपूर्ण विवेचन है। विधि से अभिप्राय है यज्ञानुष्ठान कब, कहाँ और किन अधिकारियों द्वारा किये जाने चाहिए। याग की विधियों द्वारा हम निर्दिष्ट विशेष कर्मों को करने में प्रवृत्त होते हैं तथा ये याग अज्ञात (अर्थ) फल को प्रदान करने वाली हैं। आपस्तम्ब की यज्ञ परिभाषा सूत्र (35) में कहा गया है- "कर्मचोदना ब्राह्मणानि" अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थ कर्म की स्तुति तथा निद करके व्यक्ति को कर्म में प्रवृत्त कराते हैं तथा इसी प्रकार अर्थवादपरक वाक्य यज्ञनिषिद्ध वस्तुओं की निदा तथा यज्ञोपयोगी वस्तुओं की प्रशंसा करते हैं।

यज्ञ के द्रव्यात्मक स्वरूप में बहुविध स्वरूप विस्तार में जब उसका वास्तविक अर्थ बोझिल होने लगा, तो यह आवश्यकता गहराई से अनुभव की गई कि श्रौतयागों की आध्यात्मिक एवं प्रतीकात्मक व्याख्या की जाय। ब्राह्मण ग्रन्थों के उत्तरार्द्ध में, इसी दृष्टिकोण को प्रधानता प्राप्त हुई और उसमें वैदिक यागों के अन्तर्तम में निहित गम्भीर अर्थवत्ता, वास्तविक मर्म और आध्यात्मिक रहस्यों के सन्धान के लिए जिस चिन्तन को आकार मिला, उसी का नामकरण आरण्यक साहित्य के रूप में हुआ।

4.2.3 आरण्यकों का रचना एवं देशकाल

आरण्यक ब्राह्मण एवं उपनिषद् ग्रन्थों के बीच की कड़ी है अतः जो देशकाल ब्राह्मणों का होगा वही आरण्यकों का होना चाहिए। तैत्तिरीयारण्यक में गंगा-यमुना का तटवर्ती मध्यप्रदेश अत्यन्त पवित्र तथा मुनियों का निवास स्थान बतलाया गया है-

“नमो गंगायामुनोर्मध्ये ये वसन्ति ते में प्रसन्नात्मानश्चिरं जीवितं वर्धयन्ति नमो गंगायामुनयोमुर्निभ्यश्च (तै. आ.- 2/20) शांख्यायन आरण्यक में उशीनर, मत्स्य, कुरु-पांचाल और काशी तथा विदेह जनपदों का वर्णन है- “अथ ह वै गार्ग्यो बाल किरनूचानः संस्पृष्टः आस सोऽसदुशीनरेषु स वसन्मत्स्येषु कुरुपञ्चालेषु काशिविदेहेष्विति” (6/1)।

इसी प्रकार मैत्रायणी-आरण्यक में तत्कालीन भारत के अनेक प्रतापी सम्राटों के नाम मिलते हैं-

“अथ किमैतैर्वा परेऽन्ये महाधनुर्धराशचक्रवर्तिनः केचित् सुद्युम्न - भरिद्युम्न - इन्द्रद्युम्न - कुवलयश्च - यौवनाश्वघ्नश्च - अश्वपति - शशबिन्दु - हरिश्चन्द्र - अम्बरीषनन्वक्तु - यशाति - ययाति - अनराणि अक्षसेनादयः। (मै. आर. 6/9)।

उपर्युक्त उल्लेखों से स्पष्ट है कि आरण्यक ग्रन्थों का प्रवेश प्राचीन भारत का प्रायः मध्यभाग है।

मैक्समूलर के अनुसार ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषदों की रचना बुद्ध के आविर्भाव से पूर्व हो चुकी थी। जबकि लुडविंग उपनिषदों की रचना तीन से चार हजार वर्ष पुरानी मानते हैं। महर्षि पाणिनी ने लगभग 500 ई.पू. की अपनी रचना ‘अष्टाध्यायी’ में कई स्थानों पर उपनिषदों को ग्रन्थ के रूप उल्लेखित किया है। जिससे यह तथ्य ज्ञात होता है कि उनके काल से पूर्व उपनिषदों की रचना हो चुकी थी।

जो भी हो आरण्यक एवं उपनिषदों के रचनाकाल निर्धारण में सन्नद्ध विद्वान, वैदिक साहित्यों के निम्नलिखित क्रम पर एकमत दिखाई पड़ते हैं कि सर्वप्रथम वेदों आए तदुपरान्त ब्राह्मण साहित्य लिखे गए, उसके बाद आरण्यकों की रचना हुई और इस क्रम में सबसे नवीन ग्रन्थ उपनिषद् हैं।

4.2.4 आरण्यक ग्रन्थों की भाषा एवं शैली.

आरण्यक ग्रन्थों की भाषा वैदिक संस्कृत है। आरण्यक ग्रन्थों की भाषा पर विचार करें तो हम पाएंगे कि ब्राह्मण की भाषा जटिल है और क्रमशः आरण्यक एवं उपनिषदों की भाषा सरल होती गई है। विद्वानों के अनुसार आरण्यकों की भाषा मन्त्र संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों की भाषा लौकिक संस्कृत के अधिक निकट है।

आरण्यकों की भाषा जहां ब्राह्मणों से सम्बन्ध होने के कारण विशुद्ध गद्यात्मक है तो इसमें वेदों पद्यात्मक मन्त्र भी प्राप्त होते हैं। इसकी शैली मिली-जुली है। इनमें अधिकांश स्थान पर वर्णनशैली, तो मन्त्रों के उद्धरणपूर्वक अपने प्रतिपाद्य कथन की शैली भी प्रायः दिखाई पड़ती है। इन शैलियों के अतिरिक्त आरण्यकों के वे भाग जिन्हें आज उपनिषदों के रूप में जाना जाता है उनमें दृष्टान्त शैली, उपमा, निर्वचन, शास्त्रार्थ, स्वगतभाषण, प्रश्नोत्तर आदि प्रणालियों का भी प्रयोग देखने को प्राप्त होता है।

अब हम आरण्यकों की संख्या एवं उनके विभाजन के विषय में अध्ययन करेंगे।

4.2.5 आरण्यकों के प्रवचनकर्ता

चूंकि अधिकांश आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों के भाग हैं, इसलिए उन ब्राह्मणों के प्रवचनकर्ता ही आरण्यकों के भी प्रवचनकर्ता हैं। कुछ आरण्यक के प्रवचनकर्ताओं के जो नाम हमें प्राप्त होते हैं वो इस प्रकार से हैं-

ऐतरेय आरण्यक के तृतीय आरण्यक तक के प्रवचनकर्ता महिदास हैं, चतुर्थ आरण्यक के आश्वलायन तथा पंचम के शौनक है। इसी प्रकार शांखायन आरण्यक के प्रवचनकर्ता गुणाद्वय शांखायन हैं। बृहदारण्यक के याज्ञवल्क्य हैं। कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय आरण्यक के द्रष्टा ऋषि कठ हैं। तलवकारण्यक के अन्त में काश्यप, गुप्त-लौहित्य आदि ऋषियों की सुदीर्घ वंश पराम्परा का वर्णन प्राप्त होता है।

4.3 आरण्यकों का स्वरूप

हम जानते हैं कि वेद के दो विभाग हैं (क) मन्त्र विभाग, (ख) ब्राह्मण विभाग। इसकी पुष्टि - वेदो हि मन्त्रब्राह्मण भेदेन द्विविधः अथवा मन्त्र ब्राह्मणयोर्वदनामधेयम्। से होती है। वेद के मन्त्र भाग को संहिता भी कहते हैं। संहिता परक विवेचन को आरण्यक एवं संहितापरक भाष्य को ब्राह्मण कहते हैं। वेदों के ब्राह्मण विभाग में भी आरण्यक और उपनिषद् का भी समावेश पाया जाता है।

आरण्यकों के बाद उपनिषदों का विचार उपस्थित होता है। जैसा कि पहले कह चुके हैं उपनिषदों का वेद से अति घनिष्ठ संबंध है। वास्तव में संहिताओं (मंत्र भाग), ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों चारों का ऐसा अटूट संबंध है कि चारों में चारों सम्मिलित पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए ईशावास्योपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद की “माध्यन्दिन संहिता” यानी मंत्र भाग का अंतिम अध्याय ही है। तैत्तिरीय संहिता का शेषांश तैत्तिरीय ब्राह्मण है और तैत्तिरीय ब्राह्मण के अंतिम भाग तैत्तिरीय आरण्यक, तथा तैत्तिरीय उपनिषद् है। मैत्रायणी और काठक संहिताओं से अधिक ब्राह्मणादि अब तक सम्मिलित ही हैं। छांदोग्य उपनिषद् में ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् तीनों हैं। यहीं बात बृहदारण्यक की भी है।

पं. राम गोविंद त्रिवेदी के ये वाक्य अभिनंदनीय हैं कि प्साधारण क्रम यह मालूम पड़ता है कि संहिता का उत्तरांश ब्राह्मण है, ब्राह्मण का शेष आरण्यक है और आरण्यक का शेषांश उपनिषद् है। इस क्रम से और विशेष क्रम से भी ज्ञात होता है कि वेद-रूपी एक ही शरीर के सब अंश हैं। सबको लेकर वेद पूर्ण होता है। यही कारण है कि सनातन धर्म इन मंत्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् आदि चारों का वेदत्व और नित्यत्व मानते हैं। जैसे ऋग्वेद के मंत्र यजुः, साम और अथर्व संहिताओं में पाये जाते हैं वैसे ही ब्राह्मणों में भी पाये जाते हैं। जैसे ऋग्वेदीय ऋचाओं (मंत्रों) को सामवेद में गेय बताया गया है, वैसे ही ब्राह्मणादि में निर्वाचन किया गया है। फलतः ये चारों ही वेद हैं और चारों के ही द्रष्टा, स्मारक तथा प्रचारक ऋषि-महर्षि हैं। आध्यात्मिक अर्थ करने पर सभी ज्ञानमय हैं, अद्वैतवादी हैं; आधिदैविक अर्थ करने पर सभी सकाम और निष्काम यज्ञ-परक हैं तथा आधिभौतिक अर्थ करने पर सभी में इतिहास सम्मिलित है।”

‘वैदिक साहित्य’ का यह विवेचन प्रकृत विषय पर प्रचुर प्रकाश डालता है, तो भी प्रश्न यह है कि जिन ईश आदि प्रधान उपनिषदों में वेद संहिताओं अथवा ब्राह्मणादि के अंश सम्मिलित हैं वे ही वेद अथवा वेद के अंग है अथवा उत्तर कालीन उपनिषद् भी, जिनमें प्राचीन उपनिषदों के उद्धरण चाहे हों भी, किंतु जिनमें ब्राह्मणादि के अंश उपलब्ध नहीं हैं, उसी पद के योग्य हैं।

आरण्यकों के स्वरूप को भली भांति समझने के लिए हमें आरण्यकों का संहिता, ब्राह्मण एवं उपनिषद् के साथ आरण्यक के सम्बन्ध के विषय में जानना होगा। जैसा की पूर्व में भी कहा गया है कि आरण्यक ब्राह्मण-ग्रन्थों एवं उपनिषदों के बीच की कड़ी हैं। तो सर्वप्रथम हम उनके आपसी सम्बन्ध के विषय में पढ़ेंगे।

हम पढ़ चुके हैं कि कालान्तर में वेद का पठन-पाठन शाखाओं में सुरक्षित होने लगा था। ऋक् संहिता, यजुः संहिता, साम संहिता तथा अथर्व संहिता के लगभग 1130 शाखाएं हैं। इन सभी शाखाओं के अपने-अपने ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् हुईं, किन्तु अब इनकी अतिन्यून संख्या प्राप्त होती है। उपलब्ध आरण्यकों की संख्या छः है। आचार्य भगवत्तदत्त और आचार्य

वाचस्पति गैरोला ने समुपलब्ध आरण्यकों की संख्या आठ मानी है जिनका नाम व विभाजन निम्नवत है-

1. ऋग्वेदीय आरण्यक
 - i. ऐतरेय आरण्यक
 - ii. शांखायन आरण्यक
2. यजुर्वेदीय आरण्यक
 - i. शुक्ल यजुर्वेदीय आरण्यक
 - क. बृहदारण्यक (माध्यनदिन)
 - ख. बृहदारण्यक (काण्व)
 - ii. कृष्ण यजुर्वेदीय आरण्यक
 - क. तैत्तिरीय आरण्यक
 - ख. मैत्रायणीय आरण्यक
3. सामवेदीय आरण्यक
 - i. तलवकार आरण्यक (जैमिनियोपनिषद्)
 - ii. छान्दोग्यारण्यक (कौथुमशाखीय)

अब हम उपर्युक्त सभी का संक्षिप्त परिचय देखते हैं।

4.3.1 ऋग्वेदीय आरण्यक

ऋग्वेद से सम्बद्ध दो आरण्यक प्राप्त होते हैं। इसकी दो शाखाओं शाकल एवं बाष्कल से सम्बद्ध एक-एक आरण्यक प्राप्त होते हैं जिनके नाम क्रमशः ऐतरेय एवं शांखायन (अथवा कौषीतकि) आरण्यक हैं।

i. ऐतरेय

पाँच प्रपाठकों वाला यह आरण्यक कुल अठारह अध्यायों में विभक्त ऋग्वेदीय आरण्यकों में प्रथम आरण्यक है। इसके प्रथम प्रपाठक में महाव्रत का वर्णन मिलता है जो प्रपाठक तीन के गवामयन का ही अंश है। द्वितीय प्रपाठक के प्रथम तीन अध्याय उवथ या निष्कैवल्य शास्त्र एवं प्राण-विद्या के साथ-साथ पुरुष का विवेचन करते हैं। इसके चतुर्थ, पंचम एवं षष्ठ अध्याय 'ऐतरेय उपनिषद्' हैं। तृतीय प्रपाठक का एक नाम 'संहितोपनिषद्' भी है। इसमें संहिता पद, क्रमपाठों के वर्णन के अतिरिक्त स्वर, व्यंजन आदि का विवेचन किया गया है। अत्यन्त लघु स्वरूप वाले चतुर्थ प्रपाठक में महाव्रत के पाँचवे दिन में प्रयुक्त होने वाली कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ऋचाएँ दी गयी हैं। इसके अन्तिम पाँचवे प्रपाठक में निष्कैवल्य शास्त्र का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

ऐतरेय आरण्यक के सम्पादनपूर्वक कुछ प्रकाशन भी हुए हैं। जिनमें सर्वप्रथम सत्यव्रत सामश्रयी ने 1876 में सायणभाष्य के साथ, 1909 में ए. बी. कीथ ने ऐतरेय आरण्यक का प्रकाशन किया। इस ग्रन्थ पर एक अप्रकाशित टीका का भी संज्ञान मिलता है जिसे षडगुरु शिष्य ने 'मोक्षप्रदा' नाम से लिखा है। कीथ द्वारा सम्पादित ऐतरेय आरण्यक के संस्करण में इस

आरण्यक का अंग्रजी अनुवाद भी दिया गया है। कीथ ने भी इसे पाँच आरण्यकों में ही विभाजित करते हुए इसके प्रथम आरण्यक में पाँच अध्याय, द्वितीय में सात, तृतीय में दो, चतुर्थ में एक और पंचम में तीन अध्याय सहित कुल अठारह अध्याय लिखे हैं और प्रत्येक अध्याय को खण्डों में विभाजित किया है। इन खण्डों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत है-

- क) प्रथम आरण्यक इसमें महाव्रत का वर्णन है। यह महाव्रत श्वाभयनश् सत्र का ही अंश है। इसमें प्रयोज्य मन्त्रों की आध्यात्मिक और प्रतीकात्मक व्याख्या की गई है।
- ख) द्वितीय आरण्यक इसके प्रथम 3 अध्यायों में उक्थ (निष्केवल्य, प्राणविद्या और पुरुष) का विवेचन है। इसके 4 से 6 अध्यायों में ऐतरेय उपनिषद् है।
- ग) तृतीय आरण्यक इसको 'संहितोपनिषद्' कहते हैं। इसमें संहिता, पदपाठ, क्रमपाठ तथा स्वर और व्यंजनों के आदिस्वरूप का विवेचन है। यह प्रातिशाख्यों से सम्बद्ध विषय है। इसमें शाकल्य और माण्डूकेय आदि आचार्यों के मतों का भी उल्लेख है।
- घ) चतुर्थ आरण्यक इसमें श्महानाम्नी ऋचाओं का संकलन है, जो महाव्रत में बोली जाती हैं।
- ङ) पंचम आरण्यक इसमें निष्केवल्य शस्त्र (मन्त्रों) का वर्णन है।

ii. शांखायन

शांखायन आरण्यक में कुल 15 अध्याय खण्डों में विभक्त हैं। इनकी संख्या कुछ इस प्रकार से है- प्रथम अध्याय में 8, द्वितीय में 18, तीसरे में 7, चौथे में 15, पाँचवें में 8, छठे में 20, सातवें में 23, आठवें में 11, नवें, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें में 8-8, तेरहवें में 1, चौदहवें में 2 तथा पन्द्रहवें अध्याय में 1 खण्ड सहित कुल 137 खण्ड हैं। इसके तीसरे से छठे अध्याय को 'कौषीतकी उपनिषद्' की संज्ञा दी जाती है। महाव्रत वर्णन आदि प्रसंग इसे ऐतरेय ब्राह्मण से मिलते-जुलते से हैं। भारत में व्यक्ति की पहचान कुल परम्परा और गुरु परम्परा से होती थी। व्यक्ति जिस कुल में जन्म लेता है वह उसकी कुल परम्परा है तथा वह जिस गुरु की ज्ञान परम्परा को संरक्षित करता है या संवहन करता है, वह उसकी गुरु परम्परा है। वैदिक ज्ञान के संरक्षण हेतु वेदों की शाखा से सम्बन्धित गुरु-शिष्य परम्परा की उसी सूची हमें सम्बद्ध ग्रन्थों से प्राप्त होती है। इस आरण्यक के अन्तिम अध्याय में आचार्यों की वंश परम्परा का उल्लेख मिलता है। जिसमें उल्लेख आता है कि गुणाख्या शांखायन से हमने यह विद्या पढी - 'गुणाख्याच्छाङ्खायनादस्याभिरधीतम्।' (शां. आ.-15/1)। इस उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि पूर्व के 14 अध्यायों शांखायन लिखित हैं जबकि 15वां अध्याय उनके शिष्यों द्वारा शांखायन के गुरु का नाम कहोल कौषीतकी था इसी कारण से इस आरण्यक के अन्तर्गत 'कौषीतकी उपनिषद्' का उल्लेख प्राप्त होता है।

- क) प्रथम अध्याय और द्वितीय अध्याय इसमें ऐतरेय आरण्यक के तुल्य महाव्रत का वर्णन है।
- ख) तृतीय अध्याय से षष्ठ अध्याय कौषीतकी उपनिषद् है। इसका विवरण उपनिषद् प्रकरण में है। कुरुक्षेत्र, उशीनर, काशी, पाञ्चाल, विदेहादि प्रदेशों का उल्लेख है।
- ग) सप्तम अध्याय और अष्टम अध्याय संहितोपनिषद् इसका भी विवरण उपनिषद् प्रकरण में है।
- घ) नवम अध्याय इसमें प्राण की श्रेष्ठता का वर्णन है।
- ङ) दशम अध्याय इसमें आध्यात्मिक अग्निहोत्र का सांगोपांग वर्णन है।

- च) एकादश अध्याय के निराकरण के लिए एक विशेष याग का इसमें मृत्यु विधान है।
- छ) द्वादश अध्याय इसमें समृद्धि के लिए बिल्व (बेल) के फल से एक मणि बनाने का वर्णन है।
- ज) त्रयोदश अध्याय इसमें श्रवण-मनन आदि के लिए शरीर शुद्धि, तपस्या, श्रद्धा और दम आदि की आवश्यकता का वर्णन किया गया है।
- झ) चतुर्दश अध्याय इसमें 'अहं ब्रह्मस्मि' और वेदों के अर्थज्ञान का महत्त्व बताया गया है।
- ञ) पञ्चदश अध्याय- इसमें आचार्यों का वंशानुक्रम दिया गया है। वंश-परम्परा

आचार्यों की वंश-परम्परा इसमें पन्द्रह अध्याय में आचार्यों की वंशानुक्रम परम्परा इस प्रकार दी गई है- स्वयम्भू ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, विश्वामित्र, देवरात, साकमश्व, व्यश्व विश्वमना, सुमन्यु बृहदिवा, प्रतिवेश्य, सोम, सोमपा, सोमापि, प्रियव्रत, उद्दालक, आरुणि, कहोल, कौषीतकि और गुण शांखायन इस गुण शांखायन से ही शांखायन आरण्यक की परम्परा आगे चली। कौषीतकि शांखायन के गुरु हैं। अतः यह आरण्यक गुरु-शिष्य दोनों का सम्मिलित प्रयास है। इसके प्रत्येक अध्यायों में विषय निम्नलिखित रूप में प्राप्त होते हैं।

ऐतरेय आरण्यको के समान आधुनिक विद्वानों में वाल्टर फ्राडलण्डर ने 1900 ई. में इसके दो अध्यायों का, ए. बी. कीथ ने अध्याय 7 से अध्याय 15 तक का अंग्रेजी अनुवाद के साथ 1909 में, और श्रीधर शास्त्री पाठक ने 1922 में सम्पूर्ण शांखायन को प्रकाशित किया।

4.3.2 यजुर्वेदीय आरण्यक

यजुर्वेद से सम्बन्ध रखने वाले कुल तीन आरण्यक प्राप्त होते हैं। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यनदिन एवं काण्व दोनों शाखाओं से एक ही आरण्यक प्राप्त है जिसका नाम है बृहदारण्यक और कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से तैत्तिरीय आरण्यक और मैत्रायणीय शाखा से मैत्रायणीय आरण्यक। जबकि इसकी कठ एवं श्वेताश्वर शाखाओं के आरण्यक नहीं हैं।

क) शुक्लयजुर्वेदीय

शुक्लयजुर्वेदीय इस आरण्यक की विशेष प्रसिद्धि उपनिषद् रूप में ही है। आत्मतत्त्व को विशेष रूप से प्रतिपादित करने वाला यह आरण्यक अपनी माध्यनदिन एवं काण्व दोनों शाखाओं में प्राप्त होता है। डॉ. कपिल द्विवेदी एवं बलदेव उपाध्याय का मत है कि यह वस्तुतः कोई आरण्यक नहीं है। शतपथ-ब्राह्मण की माध्यनदिन एवं काण्व दोनों शाखाओं के अन्तिम 6 अध्यायों को बृहदारण्यक-उपनिषद् कहते हैं। उपनिषदों के प्रतिपाद्य यथा ब्रह्मविद्या आदि को प्रतिपादित करने से यह उपनिषद् है तो यत्र-तत्र यज्ञों के रहस्योद्घाटन करने वाले यह ग्रन्थ अरण्यों में कहे जाने से यह आरण्यक है। सर्वाधिक प्रमाणिक, प्राचीन और महत्त्वपूर्ण यह ग्रन्थ आकार, प्रकार और प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से उपनिषदों से 'वृहत्' होने से भी यह बृहदारण्यक है। इसके छः अध्यायों में दो-दो अध्यायों के तीन काण्ड हैं, जिनको क्रमशः मधुकाण्ड, याज्ञवल्क्यकाण्ड और खिलकाण्ड कहा जाता है। इन काण्डों में सृष्टि विज्ञान, ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान, विराटपुरुष आदि का वर्णन अत्यन्त रोचक आख्यान शैली में किया गया है।

i. बृहदारण्यक (माध्यनदिन)

इस आरण्यक में कुल 6 अध्याय हैं। जिनका विभाजन कुछ इस प्रकार से है- पहले अध्याय में 6, दूसरे में 5, तीसरे में 9, चौथे में 5, पाँचवें में 15 और छठे में 4 ब्राह्मण हैं। सारे आरण्यकों में 44 अवान्तर ब्राह्मण हैं और प्रत्येक अवान्तर ब्राह्मण खण्डों या कण्डिकाओं में विभक्त है। इसके पाँचवें और छठे अध्याय को विद्वान 'खिलकाण्ड' कहते हैं। सम्भवतः ऐसा इसलिए होगा क्योंकि उनके अनुसार ये अध्याय मूल लेखक के नहीं प्रतीत होते। शतपथ ब्राह्मण से ही आरम्भ होने वाला यह आरण्यक माध्यनदिन शतपथ ब्राह्मण का ही भाग है। ब्राह्मण में से आरण्यक अंश छांट-छांट कर निकाले गए हैं। पूरा ब्राह्मण आरण्यक नहीं है। जोटो बोहट लिंग्क ने इसे 1889 में प्रकाशित कराया था।

ii. बृहदारण्यक (काण्व)

माध्यनदिन बृहदारण्यक की भांति इस आरण्यक में भी 6 अध्याय हैं। इसके पहले, दूसरे और चौथे अध्याय में 6-6, तीसरे में 9, पाँचवें में 15 और छठे में 5 ब्राह्मण हैं। काण्व बृहदारण्यक में कुल 47 ब्राह्मण हैं। शंकराचार्य के भाष्यलेखन के कारण काण्व बृहदारण्यक ही अधिकांश टीकाकारों में प्रचलित है। यज्ञों के कुछ रहस्य एवं आत्मज्ञान का विस्तृत प्रतिपादन के कारण ही इसे उपनिषदों में परिगणित किया जाता है। याज्ञवल्क्य और विदेहराज जनक की कथा आरण्यक एवं उपनिषद् दोनों में वर्णित है। उपरोक्त वर्णित प्रतिपाद्य के अतिरिक्त इसमें सन्यास, ब्रह्म, आत्मा, पुनर्जन्म आदि का वर्णन प्राप्त होता है।

ख) कृष्ण यजुर्वेदीय आरण्यक

कृष्ण यजुर्वेदीय दो शाखाओं से हमें दो आरण्यक प्राप्त होते हैं जिनका वर्णन निम्नवत है-

i. तैत्तिरीयारण्यक

कृष्णयजुर्वेद शाखा से सम्बद्ध यह आरण्यक 10 प्रपाठकों में विभाजित है। इसके प्रत्येक प्रपाठक का नामकरण प्रथम पद्य में ही कर दिया गया है जो इस प्रकार है- (1) भद्र, (2) सहवै, (3) चित्ति, (4) युजते, (5) दैव-वै, (6) परे, (7) शिक्षा, (8) ब्रह्मविद्या, (9) भृगु, तथा (10) नारायणीया। कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय आरण्यक के द्रष्टा ऋषि कठ हैं अतः इसे काठक-आरण्यक कहा जाना चाहिए ऐसा सायण का मत है।

इसके पहले से लेकर छठे प्रपाठक तक को व्यावहारिक रूप से आरण्यक माना जाता है क्योंकि सातवें से लेकर नवे प्रपाठक को मिलाकर तैत्तिरीय उपनिषद् का संकलन किया गया है और इसी आरण्यक के 10वें प्रपाठक को 'महानारायणीय' उपनिषद् कहा जाता है। प्रपाठकों का अवान्तर विभाजन अनुवाकों में है। प्रथम छः प्रपाठकों की अनुवाक संख्या इस प्रकार है- 32 \$ 20 \$ 21 \$ 42 \$ 12 \$ 12 = 139।

क) प्रथम प्रपाठक भद्र है, इसका प्रारम्भ- "भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः" मन्त्र से हुआ है। इसी तरह अन्य प्रपाठकों का भी आरम्भ किया गया है। प्रथम प्रपाठक में 'आरुणकेतु' नामक 'अग्नि' की उपासना तथा इसके लिए 'ईंट' (वेदी हेतु) के चयन का निरूपण है।

ख) द्वितीय प्रपाठक में यज्ञोपवीत का विधान है। इसमें संध्योपासना विधि, स्वाध्याय तथा पच महायज्ञ का वर्णन है। देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ संज्ञक इन पाँच महायज्ञों के दैनिक अनुष्ठान का निर्देश है- “पंचा वा एते महायज्ञाः सतति प्रतायन्ते सतति सन्तिष्ठन्ते।”

1. देवयज्ञ
2. पितृयज्ञ
3. भूतयज्ञ
4. मनुष्ययज्ञ
5. ब्रह्मयज्ञ

इस प्रपाठक के अनेक अनुवाकों में कुष्माण्डहोम और उससे सम्बद्ध मन्त्र दिये गये हैं।

क) तृतीय प्रपाठक इसमें चातुर्हात्र चिति से सम्बद्ध मन्त्र हैं।

ख) चतुर्थ प्रपाठक में प्रवर्ग्यहोम तथा अभिचार मन्त्र (छिन्धि, भिन्धि, खट्, फट्, जहि) का उल्लेख है।

ग) पंचम प्रपाठक इसमें यज्ञ सम्बन्धी कतिपय संकेत दिए गए हैं।

घ) षष्ठ प्रपाठक इसमें पितृमेध सम्बन्धी मन्त्रों का संकलन है। इसमें ऋग्वेद के भी मन्त्र दिए गए हैं।

ङ) सप्तम से नवम प्रपाठक पर्यन्त यह ‘तैत्तिरीय उपनिषद्’ है।

च) दशम प्रपाठक यह ‘महानारायणीय उपनिषद्’ है। इसको खिल काण्ड मानते हैं।

इतिहासकारों के लिए भी तैत्तिरीय आरण्यक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। बौद्ध धर्म शब्द के लिए तैत्तिरीय आरण्यक का ऋणी जान पड़ता है। आरण्यक में श्रमण शब्द का प्रयोग तपस्वी के रूप में हुआ है और बौद्ध ग्रन्थों में भिक्षु के लिए। सच तो यह है कि जैसा कि अब विद्वान मानने भी लगे हैं। बौद्ध धर्म वैदिक धर्म यानी उस सन्यास धर्म की जो आरण्यकों में प्रतिपादित है- संतति है।

ii. मैत्रायणीयारण्यक

कृष्णयजुर्वेदीय शाखा से सम्बन्ध रखने वाले इस मैत्रायणीयारण्यक में खण्डों में विभाजित कुल 7 प्रपाठक हैं। पहले प्रपाठक में 4, द्वितीय प्रपाठक में 7, तृतीय प्रपाठक में 5, चतुर्थ में 6, पाँचवे में 2, छठे में 38 और सतर्वे प्रपाठक में 11 खण्डों सहित कुल 73 खण्डों में इस ग्रन्थ का विभजन हुआ है। इस आरण्यक के उपनिषद् का नाम ‘मैत्र्युपनिषद्’ है। इस आरण्यक के प्रथम प्रपाठक में ब्रह्मयज्ञ, एवं मुनि शाकायन्य द्वारा राज बृहद्रथ को को उपदेश द्वारा वैराग्य का प्रतिपादन, द्वितीय प्रपाठक में ब्रह्मविद्या का उपदेश, तृतीय प्रपाठक में कर्म-फल, पुनर्जन्म एवं जीवात्मा के स्वरूप का वर्णन, चतुर्थ प्रपाठक में ब्रह्म सायुज्य की प्राप्ति के उपाय, पंचम प्रपाठक में ब्रह्म के विविध रूपों का वर्णन एवं कौत्स्यायनी स्तुति, जबकि इसके अन्तिम प्रपाठकों में ओम, प्रणव, उद्गीथ और गायत्री की उपासना के साथ, षडांग योग, आत्मज्ञान आदि का निरूपण किया गया है। इसी आरण्यक में परमात्मा को अग्नि और प्राण कहा गया है।

इसके सातों प्रपाठकों का वर्णन विषय निम्नलिखित हैं-

- क) प्रथम प्रपाठक ब्रह्मयज्ञ, राजा बृहद्रथ को वैराग्य और मुनि शाकायन्य द्वारा उसे उपदेश।
- ख) द्वितीय प्रपाठक शाकायन्य द्वारा ब्रह्मविद्या का उपदेश।
- ग) तृतीय प्रपाठक जीवात्मा के स्वरूप का वर्णन कर्मफल और पुनर्जन्म।
- घ) चतुर्थ प्रपाठक ब्रह्म-सायुज्य प्राप्ति के उपाय।
- ङ) पंचम प्रपाठक कौत्सायनी स्तुति। ब्रह्म की नानारूपों में स्थिति।
- च) षष्ठ प्रपाठक ओम, प्रणव, उद्गीथ और गायत्री की उपासना। आत्मयज्ञ का वर्णन। षडंग योग, शब्दब्रह्म निर्विषय मन से मोक्ष प्राप्ति।
- छ) सप्तम प्रपाठक आत्म-स्वरूप वर्णन आदि समुल्लेखित हैं।

4.3.3 सामवेदीय आरण्यक

सामवेद की जैमिनीशाखा के आरण्यक का नाम तलवकार आरण्यक है और उसके कौथुमशाखीय आरण्यक का नाम छान्दोग्यारण्यक है।

i. तलवारण्यक

इस सामवेदीय तलवारण्यक को 'जैमिनियोपनिषद्-ब्राह्मण' के नाम से भी जाना जाता है। इसमें ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् मिले हुए हैं। इस आरण्यक में अनेक सामवेदीय मन्त्रों की सुन्दर व्यख्या प्राप्त होती है। इस आरण्यक के चार अध्याय अनुवाकों में विभाजित हैं। चतुर्थ अध्याय का दशम अनुवाक प्रसिद्ध 'केनोपनिषद्' के रूप में जाना जाता है। इसके अतिरिक्त इस आरण्यक का विशेष महत्त्व पुरातन भाषा, वैयाकरणिक रूपों, शब्दावली, देवशास्त्रीय आख्यानों तथा ऐतिहासिक वर्णनों के कारण है, जिनमें अधिकांश प्राचीन विश्वास और परम्पराएं संरक्षित हैं। इस आरण्यक में मृतव्यक्ति के पुनः प्रकट होने, रहस्यात्मक शक्तियों की प्राप्ति के लिए रत पुरोहितों अथवा साधकों को प्रेतात्मा द्वारा मार्ग निर्देशन प्राप्ति हेतु उन कृत्यों का भी वर्णन है जो इन अमानुषिक शक्तियों की सिद्धि चिता, भस्म आदि अर्थात् श्मशान में निष्पन्न किए जाते हैं।

सत्यव्रत सामश्रयी ने इसे सर्वप्रथम 1878 में 'सामवेद-आरण्यक-संहिता' नाम से प्रकाशित करवाया था। जबकि इसका एच. आर्टल कृत संस्करण 1921 में प्रकाशित हुआ था।

ii. छान्दोग्यारण्यक

तलवकार ब्राह्मण के अन्तर्गत छान्दोग्य आरण्यक कुल 6 प्रपाठकों में विभक्त है। इसका सम्बन्ध 'छान्दोग्य' से किया जाता है, जिसका मतलब होता है- 'सामवेद संहिता के मन्त्रों को गाने वाला व्यक्ति'। इस ग्रन्थ में छन्दोगों के करणीय कार्यों का निर्देश भी हुआ है। जगत्प्रसिद्ध छान्दोग्योपनिषद् भी इसी आरण्यक का अंश है।

गीता प्रेस से जो 'छान्दोग्य उपनिषद्' प्रकाशित है उस ग्रन्थ का प्रथम अध्याय छान्दोग्यारण्यक है। इसकी वर्णन शैली अत्यन्त क्रमबद्ध और युक्तियुक्त है। इसमें तत्त्वज्ञान और तदुपयोगी कर्म तथा उपसनाओं का बड़ा विशद एवं विस्तृत वर्णन है। आरण्यकों में वर्णित

उपासना का स्वरूप उपनिषद में और विस्तृत हुआ और उसी के आधार पर उनसे परवर्ती स्मार्त-कर्म एवं पौराणिक और तान्त्रिक उपासनाओं का आविर्भाव हुआ।

छान्दोग्यउपनिषद में कुल आठ अध्याय हैं जिनमें पहले पाँच अध्यायों में प्रधानतया उपसनाओं को वर्णन है और अन्तिम तीन अध्यायों वर्णन है और अन्तिम तीन अध्यायों में ज्ञान का। इसमें ज्ञान और उपासना दोनों का ही बड़ा सुन्दर विवेचन है। प्रथम अध्याय में इभ्यग्राम में रहने वाले उपस्ति की कथा है। इस कथा में यह शिक्षा दी गई है कि मनुष्य आरचरण सम्बन्धी नियमों की उपेक्षा तभी कर सकता है जबकि उसके बिना प्राणरक्षा का कोई दूसरा उपाय न हो। इसी प्रकार प्रथम अध्याय में शिलक, चैकितायन और प्रवाहण संवाद तथा पंचम अध्याय में उद्दालक के सथ प्राचीन शालादि पांच महर्षियों ने राजा अश्वपति के पास जाकर आत्मतत्त्व की जिज्ञासा की है। उन दोनों प्रसंगों में यह बात स्पष्ट होती है कि यद्यपि सनातन शिष्टाचार में उपदेश देने का अधिकार ब्राह्मणों को है, किन्तु यदि कोई उत्कृष्ट विद्या अन्य किसी द्विजाति के पास हो तो भी ली जा सकती है।

4.3.4 अथर्ववेदीय आरण्यक

अथर्ववेद की पैप्पलाद एवं शौनक शाखाओं का अलग से कोई आरण्यक प्राप्त नहीं होता किन्तु उनसे सम्बद्ध गोपथ ब्राह्मण के पूर्वार्ध में ऐसी बहुत सी सामग्री है, जो आरण्यकों के अनुरूप ही है।

4.3.5 आरण्यकों का ब्राह्मणों के साथ सम्बन्ध

वैदिक सिद्धान्तों में आरण्यकों का यह योगदान महत्त्वपूर्ण है कि वे मानसिक यज्ञ को बाह्य अथवा पारम्परिक यज्ञ की अपेक्षा अधिक महत्त्व देते हैं।

“अरण्यक का महत्त्व इन दोनों के बीच की खाई को यथासंभव पाटने की दिशा में उनके आंदोलन में निहित है।”

आरण्यकों में ब्राह्मण ग्रन्थों के विचार धीरे-धीरे अमूर्त और कर्मकाण्ड रहित ‘स्वरूप’ को आत्मसात करते जा रहे थे। ब्रह्म या उच्च सत्ता के अनुभव के लिए ‘तप’ और ध्यान पूर्व आवश्यकता है। विभिन्न उपसना में यही निर्देश दिया गया है।

या ध्यान केंद्रित करने के पाठ्यक्रम के उच्चतम निरपेक्ष का प्रतिनिधित्व करने और प्रतिरूपण के रूप में विशिष्ट प्रतीक के रूप में

तकनीकी रूप से आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों के पूरक हैं; किन्तु विषयवस्तु की दृष्टि से उपनिषदों से जुड़े हैं। आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों के परिणति हैं। अतएव ऐतरेय आरण्यक में ऐतरेय ब्राह्मण भी जुड़े हुए हैं। इसी प्रकार कौषीतकी आरण्यक से कौषीतकी ब्राह्मण जुड़ा है शतपथ ब्राह्मण का अन्तिम भाग बृहदारण्यक है। आरण्यक स्वाभाविक रूप से उपनिषदों में परिवर्तित हो गये हैं। उदाहरण के लिए ऐतरेय उपनिषद् ऐतरेय आरण्यक के चार अध्यायों से मिल कर बना है।

आरण्यक-ग्रन्थ ब्राह्मण-ग्रन्थों की ही शृंखला में, वस्तुतः उनके उत्तरार्द्ध भाग में संकलित है। कर्मकाण्ड की दृष्टि से ब्राह्मण एवं आरण्यक परस्पर अधिक सम्बद्ध हैं, इसलिए बोधायन धर्मसूत्र में आरण्यकों को भी ‘ब्राह्मण’ शब्द से सम्बोधित किया गया है (3/7/7/7/16)-

आरण्यकों का मुख्य प्रतिपाद्य याज्ञिक कर्मकाण्ड के दार्शनिक पक्ष का उद्घाटन है। निरुक्त के भाष्यकार दुर्गाचार्य ने आरण्यकों के लिए 'रहस्य-ब्राह्मण' शब्द का प्रयोग किया है अर्थात् जो ब्राह्मण-ग्रन्थों के प्रतिपाद्य का उद्घाटन करें वह आरण्यक है।

संहिता और ब्राह्मण की भांति आरण्यक भी अपौरुषेय हैं। ऋषियों ने जिस ज्ञान का उपपादन एवं संरक्षण आरण्यकों में किया उन्हें हम आरण्यकों की कोटि में रखते हैं। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से विद्वानों ने आरण्यक को ब्राह्मण एवं उपनिषद् के बीच की कड़ी माना है।

आरण्यक में ब्राह्मण ग्रन्थों का सार वर्णित है इसीलिए इन्हें ब्राह्मण ग्रन्थों का परिशिष्ट भी कहा जाता है। जैन एवं बौद्ध धर्म के प्रवर्तकों क्रमशः स्वामी महावीर एवं गौतम बुद्ध दोनों ने आरण्यकों एवं उपनिषदों के तात्त्विक विमर्श को स्वीकार किया है जबकि वे ब्राह्मण कालीन (यज्ञपरक) संस्कृति को अस्वीकार करते हैं। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, शुचिता, इन्द्रियनिग्रह एवं अपरिग्रह आदि अन्य कई महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त दोनों सम्प्रदायों के मूलाधार हैं। अतः यह निश्चित है कि आरण्यक महावीर एवं गौतम बुद्ध के पूर्ववर्ती ग्रन्थ हैं।

4.3.6 आरण्यकों का उपनिषदों के साथ सम्बन्ध

उपनिषदों के तत्त्व ज्ञान को समझने के लिए आरण्यकों का ज्ञान आवश्यक है। उपनिषदों के बहुसंख्यक ऐसे प्रसंग हैं जिसके यथार्थ परिज्ञान के लिए उनके मूल आधारों को जानना आवश्यक है जो आरण्यक में निहित है। आरण्यकों के विचार और प्रतीकों को पुनः उपनिषदों ने विकसित किया है तथा जहाँ आवश्यकता पड़ी, नई व्याख्या प्रस्तुत की जो उन्हें एक संरचनात्मक स्वरूप प्रदान करता है।

अरण्यकों द्वारा आंशिक रूप से पूरा किया गया कार्य उपनिषदों ने पूरा किया। ऐतरेय-आरण्यक जिसमें ऐतरेय उपनिषद् शामिल हैं ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण से सम्बन्धित है। शांखायन या कौषीतकि आरण्यक जिसका कौषीतकि उपनिषद् सिर्फ एक भाग है। यह भी ऋग्वेद से सम्बन्धित है।

छान्दोग्यउपनिषद् का प्रथम भाग भी पारम्परिक रूप से आरण्यक के रूप में मान्य है। यह सामवेद के ताण्डय-ब्राह्मण से सम्बन्धित है। सामवेद के तवलकार सम्प्रदाय या जैमिनिशाखा का जैमिनीय-उपनिषद्-ब्राह्मण एक आरण्यक है।

4.4 आरण्यकों का प्रतिपाद्य

ब्राह्मण ग्रन्थों द्वारा प्रतिपादित कर्मकाण्डों को आरण्यकों ने अपनाया। इनमें भी ब्राह्मण ग्रन्थों की भांति- 'विधि' और 'अर्थवाद' के अंश को समाहित किया गया है। आरण्यकों ने कर्मकाण्ड को रूपकात्मक विधि से प्रस्तुत किया है।

इसके अलावा आरण्यकों में वैदिक कर्मकाण्ड का विवेचन प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। आरण्यकों में जिन कर्मकाण्डीय पर्वों का उल्लेख है उनमें से कुछ प्रमुख निम्नवत हैं- महाव्रत (तै.आ. 4, 5), प्रवर्ज/प्रवर्य (ए.आ. 1, 5, शां. 1, 2), कूपमाण्ड होम (Oblations) (तै.आ. 3), चतुर्होत्र-चित्ति (तै.आ. 3), ब्रह्मयज्ञ (तै.आ. 2), आरुणिकेतु चयन (तै.आ. 2), अवकीर्णी,

यमयज्ञ (तै.आ.), पितृमेध (तै.आ.-315), ब्रह्ममेघ (Higher Pitramels)। ये सभी अनुष्ठान प्रतीकात्मक तथा रहस्यात्मक विधि से किए जाते थे।

4.4.1 महाव्रत पर्व

महाव्रत अग्निष्टोम यज्ञ का एक भाग है। अग्निष्टोम यज्ञ ब्रह्म का स्वरूप है। अतः महाव्रत ब्रह्म है। ऐतरेयाण्यक प्रथम, पञ्चम और शांखायन प्रथम और द्वितीय में 'महाव्रत' की विवेचना की गई है। ताण्डय ब्राह्मण के रूप में महाव्रत वर्ष के मध्य में मनाया जाता है और इन्द्र इसके परम देवता हैं। ऐतरेय आरण्यक में महाव्रत पर्व का सन्दर्भ इस प्रकार से प्राप्त होता है-

“अथ प्रथमारण्यकम् ऊँ। अथ महाव्रतम्। इन्द्रो वै वृत्तं हत्वा महानभवद्यन्महानवत्तन्महाव्रतम भवन्तन्महाव्रतस्य महाव्रतत्वा पुष्टिकामः। पुष्टिवै विशः पुष्टिमान्मवतीति।”

महर्षि शायण के अनुसार महाव्रत पर्व के तीन रूप हैं। महाव्रत अग्निष्टोम यज्ञ का एक प्राकर है। यह तीन भागों में पूरा किया जाता है। तीनकाल में स्तोत्र का वाचन होता है।

महाव्रतस्तोत्र महत्त्वपूर्ण है जिस दिन इस स्तोत्र का शंसनु किया जाता है उस दिन को महाव्रत दिन कहा जाता है। क्योंकि यह स्तोत्र मुख्यरूप से प्रजापति के लिए है। प्रजापति 'महान' हैं महाव्रत का अर्थ है महान प्रजापति के लिए इस प्रकार एक महाव्रती को समर्पित 'अन्न', एक कटोरी सोम और एक पशु प्रजापति को प्रदान किया जाता था। महाव्रत यज्ञ सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में मिलता है।

महाव्रत सम्पादित करने का समय-

1. महाव्रत विष्णुवत के दिन महाव्रत का सम्पादन किया जाना चाहिए।
2. ताण्डयब्राह्मण महाव्रत को अन्न से जोड़ते हुए कहता है कि इस रीति का वर्ष के मध्य में सम्पादन करना चाहिए।
3. गवामयन सत्र, जो कि 360 दिन का प्रयोग है, के अन्तिम दिन महाव्रत किया जाता था। महाव्रत का स्वरूप अग्निष्टोम यज्ञ जैसा ही था तथा दोपहर एवं शाम की वंदना के समय सम्पन्न किया जाता था।
4. प्रातः सवन (सोमलता को पत्थर से कूट कर रस निकालना और उसकी अग्नि को आहुति देना), माध्यन्दिन सवन तथा सायं सवना।

4.4.2 यज्ञ करने की सार्वभौमिकता

जीवन को यज्ञ मानकर चलो। यज्ञ का अभिप्राय है- 'त्याग'। स्वार्थ की भावना को छोड़ देना ही यज्ञ है। यज्ञ करते हुए मनुष्य अपने आप को परमात्मा की महान् शक्ति के सहारे छोड़ देता है। मैं कुछ नहीं तू ही सब कुछ है, मेरा कुछ नहीं, सब तेरा ही तेरा है 'इदन्न मम' की भावना यज्ञ की आधारभूत भावना है, और यही भावना यज्ञ में जगमगा उठती है। जो भावना यज्ञ में होती है वही भावना अगर जीवन के प्रत्येक कार्य में अनुप्राणित हो जाए, तो समझों प्रत्येक कार्य यज्ञ हो गया, जीवन ही यज्ञ हो गया। अतएव यज्ञमय निःस्वार्थ जीवन बिताने वाले व्यक्ति को गीता में 'आत्मरतः', 'आत्मतृप्तः' और 'आत्मसंतुष्टः' कहा है, क्योंकि वह अपने में रमा हुआ है, आत्मा में भरा हुआ है, अपने आत्मा में सन्तुष्ट है। स्वार्थमय जीवन बिताने वाले को 'इन्द्रियारामः' कहा गया है, वह इन्द्रियों के साथ पञ्चम प्रपाठक में स्पष्ट किया है, जो बृहदारण्यक के प्रथम तीन

अध्यायों में भी प्राप्त होता है। वस्तुतः शतपथ ब्राह्मण और तैत्तिरीयारण्यक में प्राप्त होने वाले आख्यान का मूल तत्त्व एक ही है, किन्तु कथा का विस्तार किञ्चित् भिन्न है।

4.4.3 प्रवर्ग्य कर्म

बृहदारण्यक चौदहवें काण्ड के प्रथम तीन अध्यायों में भी प्रवर्ग्य की विवेचना है।

तैत्तिरीयारण्यक के अनुसार विष्णु ने अपनी उन्नति तथा महिमा को प्राप्त करने के लिए देवताओं के साथ मिल कर 'सत्र' नामक यज्ञ किया। यज्ञ के फल सभी देवताओं में बराबर-बराबर बटने थे किन्तु यज्ञ की समाप्ति पर विष्णु ने लोभवश सम्पूर्ण यज्ञफल अपने पास रख लिया और जाने लगे। देवताओं द्वारा पीछा किए जाने पर आत्मरक्षार्थ विष्णु ने एक हाथ में धनुष और दूसरे हाथ में बाण निकाल लिया। जिसे देखकर देवता भयभीत हो गए और वहां से भागे और झाड़ी में जा कर छिप गए। वहाँ देवताओं ने उपदिका नामक चीटियों से धनुष की प्रत्यंचा (डोरी) काटने का अनुरोध किया। इन्द्र चीटियों में प्रविष्ट हो धनुष की डोरी को काट देते हैं। डोरी काटने से धनुषरूपी यज्ञपुरुष कटकर पहले ऊपर उछला और भूमि पर जा गिरा। इस उछलने और गिरने से प्रवर्ग्य बना जिससे धर्म (डोरी कूटने की गूंज/ध्वनि), महावीर (वीर्य/बल) तथा सम्राट (वेग/गति) की उत्पत्ति हुई।

उस प्रवर्ग्य (यज्ञपुरुष) का देवताओं ने तीन भागों में विभाजन कर पुनः यज्ञ प्रारम्भ किया। यज्ञ का स्वरूप निम्नवत है-

सवन	देवता	छन्द
प्रातः सवन	अग्नि और वसु	गायत्री
मध्याह्न सवन	रूद्र और इन्द्र	त्रिष्टुप
सायं सवन	आदित्य और विश्वदेव	जगती

किन्तु देवताओं का यह यज्ञ सफल नहीं हुआ। देवताओं ने अपने देववैद्य अश्विनी कुमारों से प्रार्थना की किन्तु वे प्रवर्ग्य विद्या से अनभिज्ञ थे। यह विद्या केवल दध्यङ् ऋषि ही जानते थे। देवताओं ने दध्यङ् ऋषि से प्रवर्ग्य विद्या अश्विनी कुमारों को देने के लिए कहा किन्तु इन्द्र के भय से यह विद्या देने से ऋषि ने मना कर दिया। इस संकट से उबरने के लिए अश्विनी कुमारों ने दध्यङ् ऋषि का चेहरा बदल (कर घोड़े का सिर लगा) दिया जिससे इन्द्र उन्हें न पहचान सके। इस बदले हुए चेहरे से ऋषि ने उन्हें प्रवर्ग्य विद्या प्रदान की।

जब विद्या प्रदान करने की सूचना इन्द्र को मिली तो अपनी महिमा की रक्षा के लिए इन्द्र ने ऋषि का सिर काट दिया। अश्विनी कुमारों ने ऋषि का मूल सिर दोबारा जोड़ दिया। इस प्रकार अश्विनी कुमारों ने ऋषि की प्राणरक्षा भी की, विद्या प्राप्त की और उस प्राप्त विद्या से यज्ञपुरुष का सिर जोड़ दिया और देवताओं का यज्ञ सफल हुआ।

इस आख्यान के अनुसार प्रवर्ग्य कर्म के अनुष्ठान के बिना किया गया यज्ञ, सिर विहीन शरीर की तरह माना जाता है। जिससे न स्वर्ग की प्राप्ति होती है और न ही अभीष्ट फल की। यह अनुष्ठान सोमयागों में अनिवार्य है। यह आख्यान हमें बताता है कि पूर्णाविधि-विधान द्वारा किया गया यज्ञ ही पूर्णरूप से फलदायक होता है।

यज्ञ शिर की प्रकृष्टता के गमन के कारण प्रवर्ग्य है। आज्य से युक्त महावीर पात्र में दूध को मिलाना 'प्रवृजन' कहलाता है तथा इसी से प्रवर्ग्य बनता है। इसप्रकार इस प्रवर्ग्य को ही धर्म, महावीर और सम्राट भी कहते हैं। प्रवर्ग्य यज्ञ की महत्ता और उससे जुड़ी सामाजिक चर्चाओं को तैत्तिरीयक आरण्यक ने चतुर्थ तथा पञ्चम प्रपाठक में दिखाया है यही बात बृहदारण्यक के प्रथम तीन अध्यायों में भी मिलता है।

महावीर में (एक मिट्टी के बर्तन में धरम की हविष् प्रदान की जाती है। धरम में गाय का दूध और बकरी का दूध रहता है। इसे अश्विन् कुमारों को प्रदान किया जाता है जो इसे प्राप्त कर वृद्धि और शक्ति को प्राप्त करते हैं।

प्रवर्ग्य की मुख्य विशेषता है कि मिट्टी के गर्म कड़ाही में दूध और घी प्रस्तुत किया जाता है। प्रवर्ग्य की प्रकृया मुख्यतः दो भागों में सम्पन्न होती है।

1. महावीर को तैयार करना
2. धरम चढ़ाना

4.4.4 अन्न की महत्ता

मैत्रायणीय आरण्यक में अन्न की महत्ता का विशद वर्णन प्राप्त होता है। इसमें कहा गया है कि- सभी प्राणी जो पृथ्वी के आश्रय से जीवित रहते हैं, वे अन्न से उत्पन्न होते हैं और इसी से जीवित रहते हैं। अंत में अन्न से ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। इसी प्रकरण में पुनः कहा गया है कि प्रणियों को उत्पन्न करने वाले कोई और नहीं हैं अपितु अन्न ही हैं। इन्हें भक्षण करने के कारण ही अन्न कहा जाता है, जो कि प्रतिपल कोशिकाओं को संकोचन प्रसारण द्वारा प्राणियों का भक्षण करता रहता है (मै. आ. 6/12)-

अन्नाद्भूतानि जायन्ते जातान्यन्नेन वर्द्धन्ते।

अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते॥

तैत्तिरीयारण्यक- 8/2/1 में भी इससे सम्बन्धित वर्णन मिलता है। बल्कि यह आरण्यक अन्न को सभी भौतिक प्रणियों से श्रेष्ठ मानता है और कहता है कि यह अन्न सभी औषधियों का मूल है। अन्न द्वारा सबकुछ प्राप्य है। इससे और किंचित आगे बढ़ कर आरण्यककार कहता है कि जो व्यक्ति अन्न की रक्षा और उत्पत्ति करता है, वह मानो ब्रह्म की उपासना ही करता है।

अन्नं ही भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वा षधमुच्यते।

सर्वं वै तेऽन्नमाप्नुवन्ति। येऽन्नं ब्रह्मोपास्यते॥

ऐतरेय आरण्यक (द्वितीय प्रपाठक अध्याय एक से तीन) अन्न और आनन्द को एक माना गया है। कहा गया है कि वनस्पति तथा वृक्ष अन्न (थ्वक्) है और पशु खाने वाला (आनन्द) है। पशु के लिए वृक्ष खाद्य है उसी प्रकार जिनके दांत हैं जैसे मनुष्य पशु और वृक्ष आनन्द हैं। इसी प्रकार अन्य भी अन्य के लिए अन्न बनते हैं।

4.4.5 वैश्वानर अग्नि

मैत्रेयीआरण्यक सम्पूर्ण विश्व को चलायमान करने वाली शक्ति के रूप में 'अग्नि-पुरुष' की महत्ता को प्रतिपादित करता है और उसके बिना सम्पूर्ण विश्व को निर्जीव शकट के रूप में

बताता है। आरण्यककार कहता है कि मानव जीवन की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति मन, प्राण, वाक् इन तीनों में समाहित है। हमारी देह में प्राण स्पंदन रूप में विद्यमान है तथा सम्पूर्ण विश्व की गति इसी स्पन्दन से ही है। बिना प्राण के पल्लवमहाभूत तत्त्वों द्वारा निर्मित यह शरीर निर्जीव काष्ठ-पल्लव से बना शकट मात्र है। मन, प्राण और वाक् इनके मिलन से एक नयी शक्ति या अग्नि उत्पन्न होती है जिसे 'वैश्वानर अग्नि' कहते हैं। यही अपने वैश्वानर रूप में 'अग्नि पुरुष' के नाम से जाना जाता है। यही वैश्वानर अग्नि शरीर द्वारा खाये भोजन का पाचन करता है। (मैत्रेयी आरण्यक - 2/3, 2/6)।

4.4.6 पंचमहायज्ञ

तैत्तिरीय आरण्यक 2/10 में आरण्यककार कहता है- “जो अग्नि में आहुति देता है, वह देव यज्ञ करता है। जो भूतों (अन्य प्राणियों) को बलि देता है वह भूत-यज्ञ करता है। जो ब्राह्मणों को भोजन करता है वह मनुष्य-यज्ञ करता है। जो स्वाध्याय करता है वह ब्रह्म-यज्ञ सम्पन्न करता है। अतः हर एक गृहस्थ को पंचमहायज्ञ अवश्य करना चाहिए।

स्वाध्याय और प्रवचन दोनों ही मनुष्य को एकाग्रचित्त बनाते हैं। ब्रह्म-यज्ञ से मनुष्य को इन्द्रियों पर संयम, सदा एकरसता, बुद्धि की वृद्धि, यशवृद्धि, लोगों की अतिश्रद्धा आदि प्राप्त होती है।

वस्तुतः भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, पितृयज्ञ का विधान तो ब्राह्मण में प्राप्त होता है। किन्तु प्राणिजाति को तृप्त करने की उदात्त भावना का निर्वाह आरण्यकों एवं उपनिषदों में व्यापक स्तर पर देखने को मिलता है- “अथो अयं वा आत्मा सर्वेषां भूतानां लोकः स यज्जुहोति यद्यजते तेन देवानां लोकोऽथ यदनुब्रूते..... तद्वा एतद्विदितं मीमांसितम्।” अर्थात् हवन व यज्ञ करने से देवलोक, स्वाध्याय करने से ऋषिलोक, सन्तानेच्छु पितरों का पिण्ड आदि देने से पितृलोक, मनुष्यों को आवास तथा भोजन देने से मनुष्यलोक, पशुओं को जल व तृण देने से पशुलोक और पक्षी, चींटी आदि को तृप्त करने से अनेक लोकों की प्राप्ति होती है।

4.4.7 सोमयाग

ऐतरेय आरण्यक का प्रधान विषय सोमयाग है। यह एक दिन का प्रयोग है। समस्त सोमयाग की प्रकृति है; अतः इसका विधान प्रथम, द्वितीय और तृतीय पञ्चिका के पञ्चम अध्याय के पांचवे खण्ड तक है। इस यज्ञ के अन्तर्गत अश्वमेध, राजसूय एवं वाजपेय यज्ञ आते हैं। वाजपेय यज्ञ पुत्र प्राप्ति से सम्बन्धित है। बृहदारण्यकोपनिषद् में सोमयज्ञों में अश्वमेध का वर्णन मिलता है। शेष यागों का केवल दिग्दर्शन मात्र है। अश्वमेध यज्ञ का सम्बन्ध प्रजापति से होता है। अश्वमेध के अश्वावयवों में सम्पूर्ण सृष्टि का समारोपण कर दिया गया है। तात्त्विक दृष्टि से जो अश्वमेध याग को जान लेता है उसे यथार्थ फल की प्राप्ति होती है। इसको जानने वाले मृत्यु से पार हो जाते हैं। अतः मृत्यु उनकी आत्मा हो जाती है। इस विषय में और भी कहा गया है कि यह लोक और बत्तीस देवस्थावाहन हैं। इसके चारों ओर दूनी पृथ्वी तथा दूना समुद्र क्रमशः घेरे हुये हैं। जितनी पतली क्षुरधारा तथा सूक्ष्म मक्खी का पंख होता है उतना उनके बीच में आकाश है। उस आकाश रूप छिद्र से वे वायु में जाते हैं।

4.4.8 अश्वमेधयज्ञ

बृहदारण्यक के प्रथम अध्याय में अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है। बृहदारण्यक का शाब्दिक अर्थ है विशाल वन से सम्बन्धित। इसमें अश्व के शरीर को प्रतीक बनाकर प्रजापति के विराट् स्वरूप

का वर्णन किया गया है। अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है पर यह स्थिति तब तक नित्य नहीं होती जब तक मनुष्य अज्ञान पर नियन्त्रण न कर ले।

अश्वमेध यज्ञ का उद्देश्य राजनीतिक होता था। प्रत्येक प्रतापी नरेश से यह आशा की जाती थी कि वह इस यज्ञ का अनुष्ठान करके इन्द्रपद की प्राप्ति कर ले। महाभारत में इसका वर्णन मिलता है कि पाण्डवों ने एक बड़े समारोह के साथ अश्वमेध यज्ञ किया था।

4.4.9 अग्निहोत्र यज्ञ

तैत्तिरीय आरण्यक (10/63) में अग्निहोत्र यज्ञ का वर्णन है। यह गृहस्थ के लिए सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है। गृहस्थ व्यक्ति को इसे सपत्निक प्रातः एवं सायं करना चाहिए। इसकी ज्योति स्वर्ग तक है।

4.4.10 ऊँ का महत्त्व

मैत्रायणी आरण्यक में 'ऊँ' को ही प्रणव (यह अक्षर परमात्मा का सबसे समीपवर्ती (प्रियतम) नाम है। उसका उच्चारण किए जाने पर परमात्मा ठीक उसी प्रकार प्रसन्न होता है जिस प्रकार हम साधारण मनुष्य), उद्गीथ (सामवेदीय सूत्र विशेष का नाम उद्गीथ है। यह ऊँकार का उपास्य स्वरूप है। ऊँकार के सामवेदी उपासना को उद्गीथ कहा जाता है) तथा ब्रह्म कहा गया है- य उद्गीथः, स प्रणवः एतद् ब्रह्म। तस्माद् ऊँ इत्यनेन उपासीत् - (मैत्रा. आ.- 6/4)।

4.4.11 गायत्री का महत्त्व

तलवकार आरण्यक में गायत्री के महत्त्व को बताते हुए कहा गया है कि ओम् परमज्ञान और बुद्धि का कारण है। ओम् से गायत्री की उत्पत्ति हुई है- तद् एतद्भूतं गायत्रम्। एतेन वै प्रजापतिरमृतत्वम्। ऐतन् ऋषयः। (जैमि. उ. ब्रा.-3/7/3)। गायत्री के रूप में यह पवित्र ज्ञान सर्वप्रथम कश्यप ऋषि को प्राप्त हुआ।

4.4.12 महावाक्य

वेदान्त दर्शन के प्रसिद्ध महावाक्यों में तत्त्वमसि (वह ब्रह्म ही जीवरूप में है), अहं ब्रह्मसि (मैं, ब्रह्मस्वरूप हूँ), शांखायन आरण्यक में समुपलब्ध हैं। यह अनुभूति साधना की पराकाष्ठा है। अध्याय 13 में लिखा है कि यदयम् “आत्मा स एष तत् तत्त्वमसि इत्यात्माऽवगम्यः अहं ब्रह्मास्मि।”

4.4.13 अर्थज्ञान का महत्त्व

आरण्यक वैदिक शब्दों की व्युत्पत्तियों का संग्रह भी है। शांखायन आरण्यक के अध्याय 14 में वेदार्थ ज्ञान के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है-

स्थाणुरयं भरहारः किलाभूद्, अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।

योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते, माकमेति ज्ञान विधूतपापात्मा।।

अर्थात् अर्थज्ञान के बिना वेदों का अध्ययन मूर्खता है। जो वेदार्थ का ज्ञानी है, उसके सारे पाप कट जाते हैं और वह मोक्ष का अधिकारी हो जाता है।

4.4.14 धर्म

‘धर्म को विश्व के धारक तत्त्व के रूप में स्थापित करते हुए कहा गया है कि धर्म पद में सम्पूर्ण विश्व की प्रतिष्ठा मानी गयी है। जैसा कि लोक में देखा जाता है कि प्रजा धर्मनिष्ठ के पास ही जाती है और धर्म से पापों की निवृत्ति भी होती है- “धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठालोके धर्मिष्ठ प्रजा उपसर्पयन्ति, धर्मेण पापमनुदति, धर्मे प्रतिष्ठितमं तस्माद् धर्म परमं वदन्ति” (तै. आ. 10/63/7)

4.4.15 प्राणविद्या

आरण्यक का मुख्य विषय यज्ञ नहीं, प्रत्युत यज्ञयागों के भीतर विद्यमान आध्यात्मिक तथ्यों की मीमांसा है; यज्ञीय अनुष्ठान नहीं, बल्कि तदन्तर्गत दार्शनिक विचार ही इनके मुख्य विषय हैं। प्राणविद्या की भी महिमा का विशेष प्रति-पादन यहाँ स्पष्टतः उपलब्ध होता है। संहिता के मन्त्रों में इस विद्या का संकेत अवश्य है, परन्तु आरण्यकों में इन्हीं बीजों का पल्लवन है। प्राणविद्या का महत्त्व आरण्यकों का विशेष प्रतिपाद्य है। इस विद्या का सर्वाधिक वर्णन ऐतरेय आरण्यक में है। बलदेव उपाध्याय जी वैदिक साहित्य नामक पुस्तक में लिखते हैं -आरण्यक प्राणविद्या को अपनी अनोखी सूझ नहीं बतलाते प्रत्युत ऋग्वेद के मन्त्रों को अपनी पुष्टि में उद्धृत करते हैं। जिससे प्राणविद्या की दीर्घकालीन परम्परा का इतिहास मिलता है। आरण्यकों में आध्यात्मिक दृष्टि में प्राण को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। भौतिक संसार देवता एवं ऋषि इन सबकी उत्पत्ति प्राण से मानी गयी है। ऐतरेय आरण्यक (2/1/6) में कहा गया है कि प्राण ही इस विश्व का धारक है। प्राणरूपी पुरुष से ही पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, दिशाओं और जल आदि की उत्पत्ति हुई है और इसी से अग्नि, वायु, आदित्य, चन्द्रमा और वरुण भी उत्पन्न हुए हैं। प्राण पुरुष का पृथिवी के समान मुख अन्तरिक्ष के समान उसकी नासिका तथा द्युलोक के समान उसका ललाट उक्थ है। प्राण की शक्ति से मनुष्य से लेकर चींटी तक सब जीव स्थित हैं। प्राण सब जगह पर व्याप्त होता है- सर्व हीदं प्रणेना व्रतम्। प्राण के द्वारा ही अन्तरिक्ष तथा वायु की भी उत्पत्ति हुई है। पहले अन्तरिक्ष की उत्पत्ति हुई फिर वायु की अतः अन्तरिक्ष एवं वायु को पिता-पुत्र की उपमा दी गयी है। ऐतरेय आरण्यक में सूर्य तथा प्राण को एक ही माना गया है। ऐतरेय आरण्यक (2/1/7) में सूर्य तथा प्राण को एक ही माना गया है- प्राणेन सृष्टावन्तरिक्षं च वायुश्चान्तरिक्षं वा अनुचरन्त्यन्तरिक्षमनु शृण्वन्ति। वायुस्मै पुण्यं गन्धमावहत्येवमेतौ प्राणं प्रतरं परिचरतोऽनरिक्षं च वायुश्च। और उसी के साथ-साथ सब वेदों, ऋचाओं और ध्वनियों को भी प्राण कहा गया है- ता वा एताः सर्वाः ऋचः सर्वे वेदाः सर्वे घोषा एकैव व्यावहतिः प्राण एव प्राण ऋच इत्येव विद्यात्। (ऐ. आ.- 2/2/2)। अतः प्राणरूपी पुरुष का ध्यान करना चाहिए।

4.4.16 उक्थ

उक्थमुक्थम् के द्वारा यज्ञ के अंगों की उपासना के महत्त्व को बताया गया है- “उत्तिष्ठतेन देवताप्रसाद इत्युक्थम्” इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिससे देवता प्रसन्न होते हैं वह उक्थ है। ब्रह्म को उक्थ कहा गया है अतः ब्रह्म के स्वरूप आधिदैव, अधिभौतिक, आध्यात्मिक तीनों को उक्थ कहा जाता है।

उक्थ एक प्रशंसनीय अर्थ में प्रयुक्त हुआ है अतएव यदि हम ब्रह्म अर्थात् परमात्मा को जानना चाहते हैं तो उसके लिए एकाग्रचित्त होना पड़ेगा। मन की एकाग्रता के लिए उपासना आवश्यक है। आरण्यक में उपासना दो अर्थों में प्रयुक्त है- (1) ब्रह्मोपासना, (2) प्रतीकोपासना।

1. ब्रह्मोपासना

ब्रह्म का गुण विशेष द्वारा मनन, चिन्तन ब्रह्मोपासना है। आरण्यक में ब्रह्म को उक्थ भी कहा गया है। ईश्वरीय ध्यानावस्था की स्थिति में चित्त शोधन, चित्त प्रसन्नता और चित्त नियमन को प्रमुखता दी गयी है। यहाँ मन को महत्त्वपूर्ण साधन मानकर ईश्वरीय ध्यान योग में उसपर नियन्त्रण रखने का आदेश दिया गया है। उदाहरण स्वरूप हम देख सकते हैं कि जैसे आकाश में आकाश का विलय हो जाता है ठीक वैसे ही चित्त में चित्तवृत्तियों का विलय हो जाने से मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करता है।

2. प्रतीकोपासना

लौकिक पदार्थों का आश्रय लेकर उसका ब्रह्मभाव से मनन करना प्रतीकोपासना है, जैसे-मूर्तिपूजा, प्रकृतिपूजा इत्यादि। आरण्यकों में प्रतीकोपासना दो विधि से सम्पन्न की जाती थी। (1) यज्ञ के बहिर्भूत पदार्थों का चिन्तन (2) यज्ञ के अंगभूत पदार्थों का चिन्तन। उनमें से यज्ञों की वासना से वासित होने के कारण मन सहसा ही लग जाता है। क्योंकि मनुष्य का याज्ञाङ्ग पदार्थों से परिचय सहज है। इसलिए उसका मन सरलता से यज्ञ की ओर आकृष्ट हो जाता है। यज्ञ से देवता प्रसन्न होते हैं- उत्तिष्ठत्यनेन देवताप्रसाद इत्युक्थम्।

4.5 आरण्यकों की दार्शनिक अवधारणा

हिरण्यगर्भ सूक्त का ऋषि प्रश्न करता है- कस्मै देवाय हविषा विधेम? अर्थात् अनान्य शक्तियों में हम किस शक्ति की उपसना करें? पुरुष सूक्त में परमसत्ता के विराट स्वरूप की कल्पना की गयी है वहीं नासदीय सूक्त में सत्-असत् से परे आद्य तत्त्व की कल्पना प्राप्त होती है। उस परमसत्ता तक पहुँचने के लिए ब्राह्मण ग्रन्थ कर्मकाण्ड के कठोर नियम लेकर आए। आरण्यकों ने बिना गहन अनुभूति के कर्मकाण्ड में विश्वास का विरोध किया। आरण्यक इस विचार के साथ हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं कि रहस्यात्मक शक्तियाँ केवल बाह्य कर्मकाण्ड में उपस्थित नहीं हैं बल्कि चिन्तन और ध्यान की कुछ विशेष विधियों के साथ उपस्थित होते हैं। यह सिद्धान्त आत्म की चेतनता और ध्यान और चिन्तन की रहस्यात्मक शक्तियों का पहचान कराती हैं।

एस. एन. दास गुप्त अपनी पुस्तक 'हिन्दू मिस्टिसिज्म' में आरण्यक साहित्य के विशेष धर्म-दार्शनिक स्वरूप को उद्धाटित करते हुए कहते हैं- "We find that the conception of one great being who created the world and the Gods, and who is also the power presiding over our lives and sprites was gradually dawning in the mind of few people- In Aranyaka literature] which contains the substitution meditations the value and power of thought is realized for the first time-"

4.5.1 ब्रह्म की अवधारणा

जिस ब्रह्म की अवधारणा उपनिषदों में पूर्णरूप से स्थापित हुई है उस ब्रह्म शब्द का प्रयोग आरण्यकों में महाव्रत तथा प्रवर्ग्य की व्यख्या के सन्दर्भ में आया है। 'ब्रह्म' शब्द आरण्यकों में कई बार आया है। ब्राह्मण ग्रन्थों का भाग होने के कारण आरण्यकों ने 'यज्ञ' जैसे 'महाव्रत' तथा प्रवर्ग्य इत्यादि का वर्णन किया है।

ऐतरेय आरण्यक में ब्रह्म को परम सिद्धान्त (तत्त्व) के रूप में मानते हुए यज्ञ के अनेक तत्त्वों में मान लिया है। महाव्रतयज्ञ को ब्रह्म कहा गया है। गायत्री मन्त्र जिससे यज्ञ में स्तुति की जाती है,

ब्रह्मा कहा है। तैत्तिरीयारण्यक 9/1/1 में ब्रह्म को सर्वाेच्च मानते हुए कहा गया है कि अन्तरिक्ष में, सृष्टि के केन्द्र बिन्दु में, सुख नामक लोक में महान स्वरूप धारण कर दिव्य ज्योतियों के साथ वह ब्रह्म विराजता है। वही ब्रह्म पुनः अपने सूक्ष्म रूप में प्रजापति का स्वरूप धारण कर सूक्ष्म से सूक्ष्म प्राणी और पदार्थों में सर्वदा मौजूद रहता है- “अम्भस्य पारे भुवनस्य मध्ये नाकस्य पृष्ठे महतोः प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः” (तै. आ.- 10/1/1)

4.5.2 पुरुष की अवधारणा

आरण्यक में भी पुरुष के द्वारा ब्रह्माण्ड की सृष्टि मानी गयी है। तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार- “पुरुष के हजारों सिर हजारों आँखें और हजारों पैर हैं। जो कुछ था और जो कुछ भी होगा सभी पुरुष है। पुरुष अपने आप को सृष्टि करने के लिए यज्ञ में अर्पित करता है जिससे सृष्टि का निर्माण होता है।

ऐतरेय आरण्यक चार पुरुषों की बात करता है, जिनका नाम इस प्रकार है- (1) शरीर पुरुष, (2) छन्दपुरुष, (3) वेद पुरुष और (4) महापुरुष (Great Person)। शरीर पुरुष अनित्य है। निराकार की स्वचेतना इसका सार है। छन्दःपुरुष शब्दों का समूह है। इसका सार वर्ण ‘अ’ है। वेदपुरुष वह है जो वेद को जानता है। इसके सारतत्त्व को ‘ब्रह्मा’ प्रधान पुरोहित हैं। महापुरुष संवत्सर है इसके सार ‘सूर्य’ हैं। पुनः आरण्यक ने कहा कि तत्त्व - “निराकार चेतन स्व और सूर्य एक ही हैं। आरण्यक ने कहा है कि पुरुष (व्यक्ति) और आत्मा (स्वयं) की अवधारणाएं समान हैं। पुरुष शब्द यहाँ होने के ब्रह्मांडीय सिद्धान्त को संदर्भित करता है।”

प्राणविद्या के विवेचन में ऐतरेय आरण्यक पुरुष का तादात्म्य प्राण से करते हैं- “अथातो भित्तयोऽस्य पुरुषस्या” इस पुरुष के वाणी से पृथ्वी और अग्नि की उत्पत्ति हुई तथा आँख से स्वर्ग और आकाश, कान से चन्द्रमा तथा तारे।

इससे स्पष्ट होता है कि ऐतरेय आरण्यक का ऋषि पुरुष-सूक्त से प्रभावित हैं तथा उसके सिद्धान्त उन्हें मान्य हैं। वे पुरुष के स्थान पर ‘प्राण’ तत्त्व की स्थापना करना चाहते हैं। आरण्यक में पुरुष शब्द का प्रयोग मानव के लिए भी हुआ है। ऐ. आ. (द्वितीय प्रपाठक के पहले से तीसरे अध्याय) के अनुसार पुरुष-मनुष्य पूर्व जन्म के कर्म का परिणाम है।

4.5.3 आत्मा का सिद्धान्त

ब्रह्म परम तत्त्व है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आन्तरिक नियामक है। जबकि व्यक्ति और इस महान ब्रह्माण्डीय शक्ति का आन्तरिक और अमर आत्म है। एक समान है आत्म ही ब्रह्म है तथा ब्रह्म ही आत्मा है। ब्रह्माण्डीय तथा मनोवैज्ञानिक तत्त्व ब्रह्मांडीय और मानसिक सिद्धान्तों को समान ब्रह्म को आत्मा रूप में देखता है। ऐतरेय आरण्यक में ‘आत्मन्’ को ‘उक्थ’ (Praise Chant) कहा गया है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अन्न और आनन्द, जड़ और चेतन के सम्बन्धों में निहित है। पहले चरण में आत्मा को मात्र शरीर माना गया और क्रमशः इसे उच्च स्तर की सत्ता के लिए प्रयोग किया जाने लगा।

4.5.4 प्राण तत्त्व का सिद्धान्त

ऐतरेय आरण्यक में प्राण को इस विश्व का धारक तत्त्व माना गया है। शरीर मरणशील है तथा प्राण अमर है। प्राण सब जगह व्याप्त है- “सर्वहीदं प्राणेनावृतम्” प्राण से ही आकाश (स्थान) तथा वायु की उत्पत्ति है। ध्यात्व है कि प्राण सिर्फ वायु नहीं बल्कि वायु का मूल कारण है और

इसका स्वरूप तरंग की भांति है वेदों की ऋचाओं और ध्वनियों को प्राण कहा गया है- “ता वा एता सर्वाः ऋचः सर्वे वेदाः सर्वे घोषा एकैव व्याहृतिः प्राण एवं प्राण ऋच इत्येव विद्यात्” (ऐ. आ.- 2/2/2)।

4.5.5 ऐतिहासिक सन्दर्भ

ऐतरेय ब्राह्मण के अन्तिम तीन अध्यायों में कुछ ऐतिहासिक विवरण भी उपलब्ध हैं। इनके अनुसार भारत की पूर्वी सीमा में विदेह आदि अनेक जातियों का राज्य था। दक्षिण में भोज राज्य, पश्चिम में ‘नीच्य’ और ‘अपाच्य’ का राज्य, उत्तर में उत्तर कुरुओं और उत्तर मद्र का राज्य तथा मध्य प्रदेश में कुरु एवं पाञ्चालों का राज्य था। इस तरह इस ब्राह्मण में अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों के भी नाम आए हैं, जैसे परीक्षित-पुत्र जनमेजय, मनु-पुत्र शर्यात, उग्रसेन-पुत्र युधांश्रुषि, पिजवन पुत्र सुदास और दुष्यन्त-पुत्र भरत आदि। इसी प्रकार काशी, मत्स्य, कुरुक्षेत्र एवं खाण्डव आदि स्थानों का भी उल्लेख मिलता है।

4.5.7 आरण्यकों का स्वरूप

हम जानते हैं कि वेद के दो विभाग हैं (क) मन्त्र विभाग, (ख) ब्राह्मण विभाग। इसकी पुष्टि - वेदो हि मन्त्रब्राह्मण भेदेन द्विविधः अथवा मन्त्र ब्राह्मणयोर्वदनामधेयम् से होती है। वेद के मन्त्र भाग को संहिता भी कहते हैं। संहिता परक विवेचन को आरण्यक एवं संहितापरक भाष्य को ब्राह्मण कहते हैं। वेदों के ब्राह्मण विभाग में भी आरण्यक और उपनिषद् का भी समावेश पाया जाता है।

आरण्यकों के बाद उपनिषदों का विचार उपस्थित होता है। जैसा कि पहले कह चुके हैं उपनिषदों का वेद से अति घनिष्ठ संबंध है। वास्तव में संहिताओं (मंत्र भाग), ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों चारों का ऐसा अटूट संबंध है कि चारों में चारों सम्मिलित पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए ईशावास्योपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद की “माध्यन्दिन संहिता” यानी मंत्र भाग का अंतिम अध्याय ही है। तैत्तिरीय संहिता का शेषांश तैत्तिरीय ब्राह्मण है और तैत्तिरीय ब्राह्मण के अंतिम भाग तैत्तिरीय आरण्यक, तथा तैत्तिरीय उपनिषद् है। मैत्रायणी और काठक संहिताओं से अधिक ब्राह्मणादि अब तक सम्मिलित ही हैं। छांदोग्य उपनिषद् में ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् तीनों हैं। यही बात बृहदारण्यक की भी है।

पं. राम गोविंद त्रिवेदी के ये वाक्य अभिनंदनीय हैं कि पसाधारण क्रम यह मालूम पड़ता है कि संहिता का उत्तरांश ब्राह्मण है, ब्राह्मण का शेष आरण्यक है और आरण्यक का शेषांश उपनिषद् है। इस क्रम से और विशेष क्रम से भी ज्ञात होता है कि वेद-रूपी एक ही शरीर के सब अंश हैं। सबको लेकर वेद पूर्ण होता है। यही कारण है कि सनातन धर्म इन मंत्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् आदि चारों का वेदत्व और नित्यत्व मानते हैं। जैसे ऋग्वेद के मंत्र यजुः, साम और अथर्व संहिताओं में पाये जाते हैं वैसे ही ब्राह्मणों में भी पाये जाते हैं। जैसे ऋग्वेदीय ऋचाओं (मंत्रों) को सामवेद में गेय बताया गया है, वैसे ही ब्राह्मणादि में निर्वाचन किया गया है। फलतः ये चारों ही वेद हैं और चारों के ही द्रष्टा, स्मारक तथा प्रचारक ऋषि-महर्षि हैं। आध्यात्मिक अर्थ करने पर सभी ज्ञानमय हैं, अद्वैतवादी हैं; आधिदैविक अर्थ करने पर सभी सकाम और निष्काम यज्ञ-परक हैं तथा आधिभौतिक अर्थ करने पर सभी में इतिहास सम्मिलित है।”

‘वैदिक साहित्य’ का यह विवेचन प्रकृत विषय पर प्रचुर प्रकाश डालता है, तो भी प्रश्न यह है कि जिन ईश आदि प्रधान उपनिषदों में वेद संहिताओं अथवा ब्राह्मणादि के अंश सम्मिलित हैं

वे ही वेद अथवा वेद के अंग है अथवा उत्तर कालीन उपनिषद् भी, जिनमें प्राचीन उपनिषदों के उद्धरण चाहे हों भी, किंतु जिनमें ब्राह्मणादि के अंश उपलब्ध नहीं हैं, उसी पद के योग्य हैं।

आरण्यकों के स्वरूप को भली भांति समझने के लिए हमें आरण्यकों का संहिता, ब्राह्मण एवं उपनिषद् के साथ आरण्यक के सम्बन्ध के विषय में जानना होगा। जैसा की पूर्व में भी कहा गया है कि आरण्यक ब्राह्मण-ग्रन्थों एवं उपनिषदों के बीच की कड़ी हैं। तो सर्वप्रथम हम उनके आपसी सम्बन्ध के विषय में पढ़ेंगे।

4.7 सारांश

कर्मकाण्ड की दृष्टि से हम देखें तो हम पाते हैं कि ब्राह्मण एवं आरण्यक का एक दूसरे के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध प्राप्त होता है। बौद्धायन धर्मसूत्रकार ने आरण्यकों को ब्राह्मण की ही कोटि में परिगणित किया है तो श्रीमान् आपटे महोदय का कथन है कि, “आरण्यक, ब्रह्मणों से सम्बद्ध धार्मिक एवं दार्शनिक लेखों का संग्रह है।” आरण्यकों से सिद्धान्त में देवताओं के उद्देश्य से लेकर हवि त्याग मात्र ही नहीं है अपितु उनके लिए यह समस्त विश्व ही यज्ञमय है। यज्ञ से प्राप्त होने वाले स्वर्गादि क्षयिष्णु होने से आत्यन्तिक सुख नहीं प्रदान कर सकते ऐसा आरण्यकों का मत है। आरण्यकों के विषय में प्रो. विण्टरनिट्ज का मानना है कि छान्दोग्य और बृहदारण्यक जैसे महान् उपनिषदों का सुस्थिर एवं सुदृढ़ आधार आरण्यकों में निहित ज्ञानराशि ही है। वैदिक कर्मकाण्डों के धीरे-धीरे परिपक्व होने के साथ ज्ञान का मूलाधार आरण्यकों में पाया जाता है।

इस अध्ययन के पश्चात् हम इस स्वयं को इस निष्कर्ष के सन्निकट पाते हैं कि आरण्यक ग्रन्थों एक ओर धार्मिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिपरक तथ्यों का प्रतिपादन करते हैं तो दूसरी ओर वे ऐतिहासिक, भौगोलिक ज्ञान भी उपलब्ध कराते हैं, जिससे इनकी उपयोगिता बहुत बढ़ जाती है। आरण्यकों की भाषा लौकिक संस्कृत होने से भाषाशास्त्रीय दृष्टि से भी इनकी उपयोगिता और बढ़ जाती है क्योंकि इसी भाषा के उत्कृष्ट एवं सुदृढ़ आधार पर विशाल संस्कृत साहित्य का निर्माण टिका हुआ है जो युगों से हमारा मार्गदर्शन करती चली आ रही है।

आरण्यकों में अन्तर्याग की महत्ता स्थापित की गयी है। “हमारा वास्तविक यज्ञ अपने अन्तर्मन ‘प्राण’ को आहुति देना ही है। इस अन्तर्यज्ञ को जानने वाला पापों से मुक्त हो जाता है। यह जानकर कि हमारे अन्तर्गत एक अखण्ड यज्ञ संचालित है, प्राचीन ऋषि बाह्य यज्ञ की चिन्ता नहीं करते। इस प्रकार आरण्यकों में यज्ञ के स्वरूप में अन्तर्यज्ञ (मनोयज्ञ) के महत्त्व का उद्घाटन करता है जिसकी पूर्ण प्रतिष्ठा उपनिषदों में स्थापित होती है। अब हम उपनिषदों का परिचय एवं प्रतिपाद्य की विवेचना अगले इकाई में पढ़ेंगे।

इस इकाई के अध्ययन से हम यह जान पाए हैं कि संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् एक दूसरे के पूरक अंग हैं। जिस प्रकार शरीर के किसी भी अंग के अभाव में अपूर्णता उत्पन्न होती है उसी प्रकार इन चारों अवयवों में से किसी के ज्ञान के अभाव की स्थिति भी वेद ज्ञान के अपूर्ण होने तुल्य ही होगी। अभी तक आपने संहिता, ब्राह्मण एवं इस इकाई को लेकर आरण्यकों के सामान्य परिचय, आरण्यक शब्द का अर्थ, आरण्यकों का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य के विषय में पढ़ा। उपनिषद विषयक चर्चा हम आगे की इकाई में करेंगे।

4.8 पारिभाषिक शब्दावली

1. अरण्य - वन प्रान्त को अरण्य कहा जाता है।

2. सायण - भाष्यकार।
3. मेधा - बुद्धि।
4. सायण - भाष्यकार।
5. मेधा - बुद्धि।

4.9 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. भारतीय दर्शन, सर्वपल्ली राधाकृष्णन।
2. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी।
3. संस्कृत वाङ्मय का इतिहास, सम्पा. बलदेव उपाध्याय, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान।
4. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी।
5. ऐतरेय-आरण्यक, सायण-भाष्यसहित, आनन्दआश्रम संस्कृत ग्रन्थावली में, पूना से 1998 में प्रकाशित।
6. ऐतरेय आरण्यक (अंग्रेजी अनुवाद), अनु. प्रो. ए. बी. कीथ, लन्दन से सन् 1909 में प्रकाशित।
7. वैदिक संस्कृति, वाचस्पति गैरोला।
8. ऐतरेय-आरण्यक: एक अध्ययन, डॉ. सुमन शर्मा, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1981।
9. शांखायन आरण्यक, सं. श्रीधरशास्त्री पाठक, आनन्दआश्रम, पूना, 1922।
10. तैत्तिरीयोपनिषद्, सायण-भाष्यसहित, राजेन्द्रलाल मित्रा, कलकत्ता, 1801।
11. तैत्तिरीयोपनिषद्, सायण-भाष्यसहित, आनन्दआश्रम, पूना से, 1926।
12. बृहदारण्यक, गीताप्रस, गोरखपुर एवं आनन्द आश्रम, पूना से प्रकाशित।
13. जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण-तलवकार आरण्यक।
 - i. सम्पा. डॉ. रघुवीर तथा लोकेशचन्द्र, नागपुर, 1954।
 - ii. सम्पा. रामदेव, लाहौर, 1921।
 - iii. सम्पा. बी. आर शर्मा, तिरुपति, 1967।

4.10 बोध प्रश्न

1. वैदिक साहित्य में उपलब्ध आरण्यकों की विवेचना करें?
2. आरण्यक ग्रन्थ वेद के अविभाज्य अंग हैं, पुष्टि कीजिए?
3. आरण्यकों की स्थिति ब्राह्मण और उपनिषद् के मध्य है, सिद्ध करें?
4. आरण्यकों के अनुसार प्राण विद्या की विवेचना करें।
5. आरण्यकों में प्रतिपादित उपासना के स्वरूप को स्पष्ट करें।
6. आरण्यकों के अनुसार यज्ञ हेतु यज्ञकर्ता के लिए आन्तर्यज्ञ भी है। इस कथन की पुष्टि करें।
7. भारतीय संस्कृति में उपासना के बीज तत्त्व आरण्यकों से प्राप्त होते हैं। इस कथन की पुष्टि करें।